ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अक्टूबर २०१४ Date of Printing = 5-10-2014
प्रकाशन दिनांक= 5-10-2014

वर्ष ४३ : अङ्क १२
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : आश्विन-कार्तिक २०७१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११५

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
प्रबन्ध सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- वेदोपदेश २
- सम्पादकीय-महर्षि दयानन्द..... ४
- सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान.... ७
- इतिहास बताती.... ९
- देश की अवनति १३
- मण्डन के साथ-साथ १४
- शिक्षक दिवस १६
- गांधी का जन्म दिवस.... १८
- स्त्रीप्रत्यय और १९
- पुस्तक परिचय.... २१
- संस्कृति को भाषा से.... २२
- ब्रह्म विचार.... २४

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **सविता=ईश्वरः देवता।** विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

पुनः स यज्ञः क्व गत्वा किंकारी भवतीत्युपदिश्यते।।

फिर उक्त यज्ञ कहाँ जाके क्या करने वाला होता है, इस विषय का उपदेश किया है।।।

पृथिंवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्।।25।।

पदार्थः **(पृथिवि)** विस्तृताया भूमेः **(देवयजानि)** देवा यजन्ति यस्यां सा **(ते)** अस्याः **(ओषध्याः)** यवादेः **(ते)** अस्याः। **अत्र सर्वत्र विभक्तेर्विपरिणामः क्रियते (मूलम्)** वृद्धिहेतुकम् **(मा)** निशेधार्थे **(हिंसिषम्)** उच्छिद्याम्। **अत्र लिङर्थे लुङ् (व्रजं)** व्रजन्ति=गच्छन्ति प्राप्नुवन्त्यापो यस्मात् यस्मिन् वा तं व्रजं मेघम्। **व्रजं इति मेधनामसु पठितम्। निघं 1/10।। (गच्छ)** गच्छतु। **अत्र व्यत्ययः (गोष्ठानम्)** गवां=सूर्य्यरश्मीनां पशूनां वा स्थानम्। **गाव इति रश्मिनामसु पठितम्।। निघं 1/5।। (वर्षतु)** स्पष्टार्थः **(ते)** तस्य। **अत्र संबन्धार्थे षष्ठी (द्यौः)** सूर्य्यप्रकाशः **(बधान)** बन्धय **(देव)** सूर्य्यादि-प्रकाशकेश्वर **(सवितः)** राज्यैश्वर्य्यप्रद **(परम्)** शत्रुम् **(अस्याम्)** प्रत्यक्षायाम् **(पृथिव्याम्)** बहुसुखप्रदायाम् **(शतेन)** बहुभिः **(पाशैः)** बंधनसाधनैः। **पश बंधनइत्यस्य रूपम् (यः)** अधर्मात्मा दस्युः शत्रुश्च **(अस्मान्)** सर्वोपकारकान् धार्मिकान् **(द्वेष्टि)** विरुध्यति **(यम्)** दुष्टं शत्रुम् **(च)** समुच्चये **(वयम्)** धार्मिकाः शूराः **(द्विष्मः)** विरुद्धयामः **(तम्)** पूर्वोक्तम् **(अतः)** बन्धनात् कदाचित् **(मा)** निषेधार्थे **(मौक्)** मोचय। **मुच्लृ मोक्षणे इत्यरमाल्लोडर्थे लुङ्यडभावे च्लेः सिजादेशे बहुलं छन्दसीतीडभाः। वदव्रजेति वृद्धिः। संयोगांतस्य लोप इति सिज्लुक्। अयं मंत्र श. 1/2/4/16 व्याख्यातः।। 25।।**

सपदार्थान्वयः **हे देव!** सूर्य्यादि-प्रकाशकेश्वर! **सवितः=परमात्मन्** राज्यैश्वर्य्यप्रद! **ते=तव कृपयाऽहं देवयजनि=देवयज्ञाऽधिकरणाया देवा यजन्ति यस्यां सा ते=अस्याः पृथिवि=भूमेः** विस्तृताया भूमेः **(ओषध्याः)** यवादेः **मूलम्=वृद्धिहेतुं** वृद्धिहेतुकं **मा** न **हिंसिषम्** उच्छिद्याम्।

मया पृथिव्यां बहुसुखप्रदायां **योऽयं यज्ञोऽनुष्ठीयते, स व्रजं=मेघं** व्रजन्ति=गच्छन्ति=प्राप्नुवन्त्यापो यस्माद् यस्मिन् वा तं व्रजं मेघं **गच्छ=गच्छतु, गत्वा गोष्ठानं** गवां=सूर्यरश्मीनां पशूनां वा स्थानं **वर्षतु, द्यौः** सूर्य्यप्रकाशो **वर्षतु।**

हे वीर! त्वमस्यां प्रत्याक्षायां **यः** अधर्मात्मा दस्युः शत्रुश्च **अस्मान्** सर्वोपकारकान् धार्मिकान् **द्वेष्टि** विरुद्धयते, (विरुणाद्धि) **यं दुष्टं शत्रुं च वयं** धार्मिकाः शूरा **द्विष्मः** विरुद्धयामः, **(विरुन्द्धः) तं** पूर्वोक्तं **परम्=शत्रुं शतेन** बहुभिः **पाशैः बन्धन-साधनैः** बधान्=बन्धय।

तं पूवोक्तम् **अतो=बन्धनात् कदाचित् मा मौक्=मा मोचय।। 1/25।।**

भाषार्थ : हे **(देव)** सूर्य आदि के प्रकाशक **(सवितः)** राज्य और ऐश्वर्य के दाता परमात्मन्। **(ते)** आपकी कृपा से मैं **(देवयजनि)** देवों के यज्ञ की आधार **(ते)** इस **(पृथिवी)** विस्तृत भूमि के **(ओषध्याः)** यव-आदि ओषधियों के **(मूलम्)** मूल का **(मा हिंसिषम्)** उच्छेद न करूँ।

मैं **(पृथिव्याम्)** बहुत सुखदायक इस पृथिवी पर जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ, वह **(व्रजम्)** जल के प्राप्ति स्थान मेघ को **(गच्छतु)** प्राप्त हो, और वहाँ पहुँचकर **(गोष्ठानम्)** सूर्य की किरणों वा पशुओं के स्थान में **(वर्षतु)** प्राप्त हो, फिर यज्ञ से शुद्ध हुये **(द्यौः)** सूर्य प्रकाश की वर्षा हो।

हे वीर पुरुष! तू **(अस्याम्)** इस पृथिवी पर **(यः)** जो अधर्मात्मा डाकू और शत्रु **(अस्मान्)** हम सर्वोपकारी धार्मिक जनों का **(द्वेष्टि)** विरोध करता है **(यम्)** और जिस दुष्ट शत्रु का **(वयम्)** हम धार्मिक शूर लोग **(द्विष्मः)** विरोध करते हैं। **(तम्)** उस **(परम्)** शत्रु को **(शतेन्)** अनेक **(पाशैः)** बन्धनों से **(बधान)** बाँध।

(तम्) उस शत्रु को **(अतः)** इस बन्धन से कभी **(मा मोक्)** मुक्त न कर।। 1/25।।

हे सवितः=परमात्मन्/ ते=तव कृपयाऽहं देवयजनि=देवयज्ञाधिकरणाया-पृथिवि-भूमेः, (ओषध्याः)

भावार्थः ईश्वर आज्ञापयति-विद्वद्भिर्मनुष्यैः पृथिव्यां राज्यस्य, त्रिविधिस्य यज्ञस्यौषधीनां च हिंसनं कदाचिन्नैव कार्यम्।

योऽग्नौ हुतद्रव्यस्य सुगन्ध्यादिगुणाविशिष्टो धूमो मेघमण्डलं गत्वां सूर्यवायुभ्यां छिन्नस्याकर्षितस्य धारितस्य जलसमूहस्य शुद्धिकरो भूत्वाऽस्यां पृथिव्यां वायु जलौषधिशुद्धिद्वारा महत्सुखं सम्पादयति। तस्मात्स यज्ञः केनापि कदाचिन्नैव त्याज्यः।

ये दुष्टा मनुष्यास्तानस्या पृथिव्यामनेकैः पाशैर्बद्ध्वा दुष्टकर्मेभ्यो निवर्त्य कदाचित्ते न मोचनीयः।

अन्यच्च-परस्परं द्वेषं विहायान्योऽन्यस्य सुखोन्नतये सदैव प्रयतितव्यमिति।।1/25।।

भावार्थ ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को इस पृथिवी पर राज्य, उक्त तीन प्रकार के यज्ञ, और औषधियों का नाश कभी नहीं करना चाहिए। अग्नि में होम किये हुए द्रव्य का सुगन्धादि गुणों से युक्त धूम, मेघमण्डल में पहुँच कर सूर्य और वायु से छिन्न, आकर्षित और धारित जलों का शोधक बनकर इस पृथिवी पर वायु, जल और औषधियों की शुद्धि से महान सुख को सिद्ध करता है। अतः उस यज्ञ को कोई कभी न छोड़ें। जो दुष्ट मनुष्य हैं, उनको इस पृथिवी पर अनेक बन्धनों से बाँध कर दुष्ट कर्मों से हटाकर, उन्हें कभी मुक्त न करें।

और-आपस में द्वेष को छोड़कर एक-दूसरे की सुख-वृद्धि के लिये सदा प्रयत्न करें।। 1/25।।

भा० पदार्थः- व्रजम्=मेघमण्डलम्। परम्=दुष्टमनुष्यम्। शतेन्=अनेकैः।

भाष्यसार- 1. ईश्वर- सूर्य आदि का प्रकाशक होने से ईश्वर का नाम 'देव' तथा राज्य-ऐश्वर्य का देने वाला होने से 'सविता' है।।

2. ईश्वर प्रार्थना- हे सविता देव परमात्मन्! आप कृपा करके पृथिवी की यवादि औषधियों के मूल का विनाश मत करो।

3. यज्ञ- पृथिवी पर किया हुआ यज्ञ मेघ को प्राप्त होता है तथा सूर्य रश्मियों में जाकर स्थित होता है और फिर विशुद्ध सूर्य का प्रकाश पृथिवी आदि पर वर्षता है।।

4. दुष्ट मनुष्य- इस पृथिवी पर जो अधर्मात्मा लोग हैं, जो धार्मिक जनों का विरोध करते हैं, उन्हें बन्धन में रखें। बन्धन से मुक्त कभी न करें।।

सम्पादकीय

महर्षि दयानन्द का पावन स्मरण

(ओमप्रकाश शास्त्री, चल. 094169888351)

उन्नीसवीं शताब्दी धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की शताब्दी थी। दुनिया में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं किन्तु भारत में जो परिवर्तन हुए और जैसे परिवर्तन हुए हैं, वे दुनिया के इतिहास में अपने आपमें अभूतपूर्व हैं, अभूतपूर्व इसलिए क्योंकि दुनियां में जो भी परिवर्तन हुए या तो वे धार्मिक थे, या सामाजिक थे अथवा राजनीतिक थे भारतवर्ष में जिन परिवर्तनों के लिए क्रान्ति का सूत्रपात हुआ उसका उद्देश्य धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन था।

धार्मिक क्षेत्र जन्मजात पण्डितों के शिकञ्जे में था; सामाजिक क्षेत्र पर सामन्तवादी मानसिकता के लोगों का कब्जा था, जबकि राजनीतिक व्यवस्था अंग्रेजी शासकों के अधीन थी। पाखण्डी और जन्मजात पण्डितों के चंगुल से धार्मिक, सामन्तवादियों से सामाजिक और विदेशी शासकों से राजनीतिक व्यवस्था को मुक्त कराना कोई आसान कार्य नहीं था। धार्मिक स्थिति की मैं बात करुँ, तो उसमें पहले तो वेदों का कोई नाम निशान ही नहीं था और यदि था भी तो विकृत अर्थों के साथ। वेद को जन्मजात पण्डितों के अतिरिक्त और कोई न पढ़ सकता था न ही सुन सकता था। इन तथाकथित पण्डितों के कारण वेद अपने वास्तविक अर्थ से दूर कपोल कल्पित कथा-किस्सों की भूल भुलैया में फंसकर रह गये थे। वेद के पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने के अधिकार से स्त्री और शूद्रों को वञ्चित कर दिया था, धर्म के नाम पर बलिप्रथा और अनेक पाखण्डों का बोल बाला था। इसी प्रकार जिनकी सामन्तवादी सोच थी, वे ऊँची जाति के अभिमान में चूर होकर अपने से निम्न लोगों का जमकर शोषण करते थे, समाज में उनकी स्थिति बद से बदतर थी; उन्हें दासता का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। तथाकथित ऊंची जातियों की सेवा करना मानो उनकी नियति बन गयी थी। समाज में ऊँची-नीची जाति तथा छूत-अछूत का दौर अपने चरम पर था। समाज सामन्तवादी मानसिकता की समस्या से जूझ रहा था। देश की राजनीतिक व्यवस्था पूरी तरह अंग्रेजी शासकों के नियन्त्रण में थी। राजनीतिक स्वतन्त्रता गुलामी के गहरे गर्त में गाते खा रही थी। राजनीतिक चेतना प्रायः शून्य हो चुकी थी; अपने शासन और शासकों की कल्पना भी हमारे लिए असम्भव सी बात थी। इस देश के लोगों का जीवन अंग्रेजी शासकों के रहमोकरम पर निर्भर था। यह भारत अंग्रेजों के शासन में भारत कम था इण्डिया ज्यादा था। इस देश की सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पहचान को मिटाने का अहर्निश प्रयास चल रहा था। देश का राजनीतिक अस्तित्व पूरी तरह अंग्रेजों के राजनीतिक अस्तित्व पर टिका था। यदि मैं यह कह दूँ कि अपना कोई राजनीतिक अस्तित्व ही नहीं था, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। पाठक गण! धार्मिक दुर्दशा, सामाजिक असमानता और राजनीतिक परतन्त्रता ये तीनों देश के लिए अभिशाप थे, जिनसे जूझने की देश में इच्छा तो थी किन्तु इच्छाशक्ति का अभाव था। इतनी विषम

ओर भयंकर स्थिति से आखिर किसने टक्कर ली? किसने धार्मिक दुर्दशा, सामाजिक विषमता और राजनीतिक परतन्त्रता को समूल नष्ट करने का सङ्कल्प लिया? कौन था जिसका जीवन चरित्र पढ़ने से यह पता चलता है कि उसका तो मानो जन्म ही उपरोक्त विडम्बनाओं का सामना कर उन पर विजय हासिल करने के लिए ही हुआ है? कौन था वो, जिसने राष्ट्र पर छाये निराशा व संकटों के बादलों को छिन्न-भिन्न करने का कार्य किया? कौन था वो, जो देश से जातिगत भेदभाव तथा छूत-अछूत के दौर को जड़ से मिटाने के लिए आजीवन पुरुषार्थ करता रहा? इस प्रकार के असंख्य प्रश्नों का उत्तर एक ही है ये वो हैं जिनका आज से लगभग 130 वर्ष पूर्व दीपावली के पावन पर्व पर निर्वाण हुआ और जिनके विषय में कवि को कहना पड़ा कि

वेद की पावन ऋचा से जिन्दगी ऐसी जला डाली।

जब जले तो भोर आया और बुझे तो थी दिवाली।

वे थे युग प्रवर्तक, वेदोद्धारक, अखण्ड ब्रह्मचारी, दलितोद्धारक, समाज सुधारक, अजेय शास्त्रार्थ महारथी महर्षि दयानन्द सरस्वती। मानव समुदाय ईश्वर को लेकर हिन्दू मुस्लिम, सिख, इसाई, बौद्ध, जैन, यहूदी, पारसी आदि असंख्य मतमतान्तरों में विभक्त हो गया था, उसे एकता के सूत्र में बाँधने के लिए, धर्म के नाम पर फैले असंख्यों आडम्बरों के जाल से समाज को मुक्त करने के लिए, माज मे ंसामाजिक समता ओर ममता का सन्देश देने के लिए तथा देश में समूची स्वतन्त्रता के लिए ऋषिवर ने जिस क्रान्ति का सूत्रपात किया, वह पूरी दुनिया को युगों-युगों तक प्रेरणा देती रहेगी। स्वामीजी के जीवन का हर पहलू हमें जीवन में पग-पग पर प्रेरणा देने वाला है। बहुआयामी वयिक्तत्व के तथा विलक्षण प्रतिभा के धनी महर्षि दयानन्द सरस्वती धार्मिक दुर्दशा, सामाजिक असमानता और राजनीतिक गुलामी के कठिन त्रिकोणीय मोर्चों से सफलतापूर्वक, दृढ़तापूर्वक और धैर्यपूर्वक न केवल जूझते रहे अपितु उन पर ऐतिहासिक विजय भी पाते रहे। स्वामी जी निर्भय और न्यायकर्त्ता थे, स्वामी जी सर्वप्राणिहितकर व दीर्घदर्शी थे, स्वामी जी समदृष्टि व पक्षपातरहित थे, स्वामीजी प्रभावशाली व प्रतिभावान् थे, स्वामी जी महा-समीक्षक व महासंशोधक थे, स्वामी जी तेजस्वी व ब्रह्मवर्चसी थे, स्वामी जी ब्रह्मवित् व ब्रह्मपरायण थे, स्वामी जी बालब्रह्मचारी व ऊर्ध्वरिता थे; स्वामीजी सुवक्ता व वाग्मी थे; स्वामी जी जितेन्द्रिय व योगीराज थे; स्वामी जी आचार्यों के आचार्य व गुरुओं के गुरु थे; स्वामी जी पूज्यों के पूजय व जगद्वन्द्य थे; स्वामी जी प्रहसितवदन व प्रांशुबाहु थे; स्वामी जी समुन्नतकाय व सदानन्द थे; स्वामी जी निर्मल व निर्विकार थे; स्वामीजी समुद्रवत् गम्भीर व पृथिवीवत् क्षमाशील थे; स्वामी जी अग्निवत देदीप्यमान् पर्वतवत कर्त्तव्यस्थिर थे; स्वामी जी सदागतिवायुवत् निरालस व रामवत् लोकहितकारी व परशुरामवत् अन्यायसंहारी थे, स्वामी जी ब्रहस्पतिवत्वेदवक्ता व वसिष्ठवत् वेदप्रचारक थे; स्वामी जी असत्य के परमद्वेषी व सत्य के पक्षपाती थे। पण्डित श्री शिवशंङ्कर काव्यतीर्थ का ऋषिवर के विषय में किया गया उपरोक्त आकलन कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अपितु उनके गुणों के उल्लेख का सत्प्रयास है। भीष्मपितामह ने श्रीकृष्ण को

अर्ध्य दिये जाने के पाण्डवों के प्रस्ताव का विरोध करने वाले शिशुपाल को फटकराते हुए कहा था- ''समस्त भूमण्डल पर नीति में, प्रीति में, ज्ञान में, विज्ञान में, वेद-वेदाङ्गों के ज्ञान में, कर्मकौशल में, वाक्पटुता में, कृतज्ञता में, शिष्टता में, तेज में, ओज में, बल में, बुद्धि में, साधना में, श्रीकृष्ण के तुल्य कोई नहीं है। समस्त भूमण्डल के राजा श्रीकृष्ण के समक्ष हर विषय में फीके हैं। मान्य पाठकगण, यही कथन महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी पर पूर्णतः चरितार्थ होता है। आध्यात्मिक, चारित्रिक, आत्मिक, मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक बल में, ओज में, तेज में, वेद विद्या के ज्ञान में, साधना में, तप में, त्याग में, भक्ति में, शास्त्रार्थ कौशल में, सत्य को जानने में, जनाने में, सत्य को मानने-मनवाने में समस्त भूमण्डल पर उन जैसा कोई नहीं था, जिसे शास्त्रार्थ समर में पराजित न किया हो। आचार्य मेधाव्रत जी ने दयानन्द लहरी में स्वामी जी के विषय में ठीक ही लिखा है कि-

आदित्यब्रह्मचारी गुणिगणगणनास्वग्रगण्यो वरेण्यः,
वाग्मी वश्येन्द्रियाणामवनिसुरकुलोत्तंस आर्यावतंसः।
नानापाखण्डिजालं जगतिकुपथगं धर्मविद्यो न्यषेधत्,
सन्मार्गस्योपदेष्टा जयति स जगदानन्दनो वन्दनीयः।।

अर्थात् वे ऋषिवर अखण्ड ब्रह्मचारी थे; सम्पन्न वर्ग की गिनती में उनका स्थान सर्वोपरि था। वे ऋषि प्रशस्त और प्रखर वक्ता हैं, इन्द्रियों को वश में करने वालों में वरणीय स्थान है ब्राह्मण कुल के शिरोभूषण तुल्य एवम् आर्यों के शिरोमणि हैं। धर्म और कर्त्तव्य के ज्ञाता ऋषि ने निषिद्धाचरण सेवियों तथा पाखण्डों का खण्डन किया। वे ऋषि सत्यमार्ग के उपदेष्टा जगत् के प्रमोदकारी सबके वन्दनीय और पूजनीय हैं। शंकर (ईश्वर) के मूल प्रश्न को लेकर उसका उत्तर खोजते-खोजते महर्षि दयानन्द सरस्वती बन गये। शास्त्रार्थ करते करते, वेद की दुन्दिभि बजाते-बजाते, शताब्दियों से सोये समाज को जगाते-जगाते, पाखण्ड को भगाते-भगाते; युगों युगों से सामन्तवादी सोच के शिकार बिछुड़ों और पिछड़ों को गले लगाते-लगाते; समाज से भेद भावों को मिटाते-मिटाते; अन्त में राष्ट्र के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर चले गये। दीपावली के दिन शाम को सबसे प्रसन्नतापूर्वक बातचीत करते हुए; शान्त व एकाग्रचित्त से परमेश्वर का ध्यान करते हुए दृश्यलोक से अदृश्यलोक की, इस लोक से उस लोक की, अन्त से अनन्त की यात्रा पर हम सबको छोड़कर निकल गये। अमिट यश, अमिट निशानियाँ, अमिट पावन स्मृतियाँ, अमिट आदर्श, जीवन को जानने और उसे सफलतापूर्वक जीने के अमिट सिद्धान्त न केवल हमें अपितु पूरी दुनियां को देकर चले गये। आचार्यवर जब तक इस जग में जिए, तब तक राष्ट्र के, संस्कृति सभ्यता के, दलितों के, महिलाओं के, वैदिक धर्म के, प्राणिमात्र के, सत्य के, न्याय के, मानवता के सच्ची भक्ति के प्रबल पक्षपाती बनकर जिए। ऋषि के निर्वाण दिवस को हम आत्म चिन्तन करें और उसे प्रेरणा दिवस के रूप में याद करें। हम संङ्कल्प लें कि हमारे ऋषिवर ने जिन चुनौतियों का सामना धीरता, वीरता व गम्भीरता के साथ किया हम उसी धीरता वीरता व गम्भीरता के साथ समाज में व्याप्त कुप्रथाओं का, पाखण्ड का, पाप का, छुआछूत का, अधर्म का, अशिक्षा का, असमानता का, नास्तिकता का, जातिवाद का, प्रान्तवाद का, भाषावाद का और अलगाववाद का डटकर सामना करेंगे तथा इनको समूल नष्ट करने का प्रयास करेंगे तभी इस पावन दिवस को मनाना सार्थक होगा और ऋषिवर के उपकारों के प्रति हमारी सच्ची कृतज्ञता होगी और सच्ची श्रद्धांजलि भी यही होगी।

❑❑

सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० राजवीर शास्त्री चल बसे

धर्मपाल आर्य

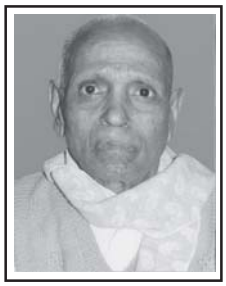

शास्त्री जी पिछले काफी दिनों से अस्वस्थ चल रहे थे। वृद्धावस्था में यूँ भी कई रोग ओघेरते हैं। लेकिन उनके सुपुत्र और सुपुत्र बन्धुओं ने उनकी अच्छी सार-सँभाल की। माताजी स्वयं वृद्ध होते हुए भी उनका बहुत ध्यान रखती थीं। मैं जब कभी उनके दर्शन गया, प्रायः स्वाध्याय करते ही मिलते थे। कभी सो गये हुए भी मिले तो पुस्तकें उनके अगल-बगल दिखाई देती थीं, जिससे पता चलता था कि वे पढ़ते-पढ़ते ही सोये थे। मेरे प्रति उनका स्नेह विशेष होना स्वाभाविक ही था। मैं उनका विद्यार्थी भी रहा और बाद में "ट्रस्ट" में उनका सहायक भी था। वे "ट्रस्ट" के प्रधान रहे और मैं सचिव के रूप में काम करता रहा। 1-2 वर्ष पूर्व उन्होंने स्वेच्छा से "ट्रस्ट" के प्रधान पद से इस्तीफा दे कर यह दायित्व मुझे सौंप दिया था। "दयानन्द सन्देश" के आप यशस्वी सम्पादक थे। "ट्रस्ट" के प्रकाशन में भी उनका अमूल्य और अविस्मरणीय योगदान रहा है।

25 सितम्बर 2014 को अल्प सुबह ही उनके सुपुत्र ने मुझे चलभाष पर उनके दिवंगत होने की सूचना दी। दुर्भाग्य ये रहा कि उन्होंने मुझे बताया कि छोटा भाई श्रीनगर से और 150 किलोमीटर दूर है। उसके आने में बहुत विलम्ब हो जाएगा अतः अन्तिम संस्कार अगले दिन करेंगे और जब हम अगले दिन पहुँचे तो पता चला कि संस्कार तो उसी दिन हो चुका है। उनके अन्तिम संस्कार में शामिल न हो पाने का पछतावा मुझे हमेशा बना रहेगा। अब उनकी शोक-सभा 5 अक्टूबर 2014 को 2 बजे से 4 बजे तक आर्य समाज मन्दिर तिबड़ा रोड पर मोदीनगर में रखी गयी है।

स्वामी प्रणवानन्द जी, गुरुकुल गौतम नगर और आचार्य धनञ्जय शास्त्री, गुरूकुल पौन्धा- देहरादून की देखरेख में उनका अन्तिम संस्कार वैदिक रीति-नीति से किया गया।

कोई अपना जाता है, तो दुःख होना बहुत स्वाभाविक है। परन्तु जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु होना भी अवश्यम्भावी है, इसे कोई टाल नहीं सकता। भर्तृहरि महाराज ने लिखा है-

'परिवर्तिनी संसारे मृतः को वा न जायते।'

अर्थात् इस परिवर्तनशील संसार में जन्म और मृत्यु का खेल निरन्तर चलता ही रहता है लेकिन जन्म लेना उसी का सार्थक है, जिसके जीवन से कुल समाज और राष्ट्र उन्नति को प्राप्त होता है। शास्त्री जी ने पूरे जीवन अध्ययन और अध्यापन करके और अपनी निर्भय, निष्पक्ष लेखनी से समाज और राष्ट्र की जो सेवा की है, समाज उसके लिए उनका सदैव ऋणी रहेगा। आज भले ही भौतिक शरीर से हमारे मध्य नहीं हैं, लेकिन उनकी कीर्ति, उनकी सीख और उनके उपदेश एवं उनका साहित्य सदैव हमारा मार्गदर्शन करता रहेगा। नीतिकार ने भी कहा है- 'कीर्तिर्यस्य स जीवति।' अर्थात् जिसकी समाज में कीर्ति है, वह जीवित है।

परमात्मा हमें इतनी शक्ति दे कि हम उनके बताये

व सुझाये मार्ग पर चलते रहें और उनके अधूरे कार्यों को पूरा कर सकें।

विशेष सूचना : नवम्बर अथवा दिसम्बर का अंक उनकी स्मृति में विशेषांक के रूप में निकाला जाएगा। अतः सभी विद्वान् लेखकों से अनुरोध है कि वे उनसे जुड़े संस्मरण एवं लेख भेजकर हमें कृतार्थ करें।

आदरणीय शास्त्री जी एक दृष्टि में :-

- मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरूषो वेद! माता श्रीमती मनसा देवी पिता श्री शिव चरण दास जी तथा आचार्य पं. विश्वप्रिय जी शास्त्री एवं आचार्य भगवान देव जी (अपर नाम स्वामी ओमानन्द सरस्वती) आदि ने स्व-स्व कर्त्तव्य का पालन करके आपके रूप में एक तलस्पर्शी वैदिक विद्वान् की सृष्टि करके धन्य हुए एवं आर्यसमाज रूपी माता की गोदी में एक लाल का उदय हुआ।

- आपको 'दयानन्द सन्देश' का सम्पादक नियुक्त करके एवं गम्भीर शोध कार्य का अवसर देकर "आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट" के संस्थापक लाला दीपचन्द जी भी पुण्य के भागी बने।

- गुरुकुल महाविद्यालय झज्जर, गुरुकुल बलकाना, मेरठ, गुरुकुल गौतम नगर आदि आर्य संस्थाओं का भी आप के निर्माण में प्रशंसनीय योगदान रहा। यह संस्थाएं भी आपकी योग्यता, सेवा एवं प्रतिष्ठा को देख, जान कर गौरव का अनुभव करती हैं।

- वैय्याकरण के रूप में आपसे शिक्षा प्राप्त मनीषियों में आचार्य श्री बलदेव जी (संस्थापक कालवा गुरुकुल) अन्यतम हैं, जिनके शिष्य आचार्य ज्ञानेश्वर जी (आचार्य दर्शन योग महाविद्यालय) व आचार्य सतीश प्रकाश जी (अमेरिका में गुरुकुल के संचालक तथा स्पेनिश व अमरीकी भाषा में सत्यार्थ-प्रकाश के अनुवादक) तथा ब्र० आर्यनरेश जी वैदिक प्रवक्ता आदि अनेक लब्धप्रतिष्ठित विद्वान् आपकी ज्ञान परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं।

- आप लगभग पिछले चार दशक से आर्य जगत् की प्रतिष्ठित पत्रिका **दयानन्द सन्देश** (मासिक) का सम्पादन करते रहे हैं। इस पत्रिका में शंका समाधान एवं लेखों द्वारा आर्य जनता को सतत् आपसे मार्गदर्शन प्राप्त होता रहता है। विशेषांकों के माध्यम से श्री राम एवं श्रीकृष्ण के वास्तविक विश्ववंद्य स्वरूप को पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने का स्तुत्य एवं सफल प्रयास आपने किया है। सृष्टि संवत्, वैदिक मनोविज्ञान, कालाकाल मृत्यु आदि उक्त पत्रिका के चर्चित विशेषांक रहे हैं।

- वैदिक कोष पर विमर्श टीका प्रस्तुत करके आपने वेद के अध्ययनरत छात्रों एवं शोधार्थियों का मार्ग प्रशस्त किया है।

- पतञ्जलि मुनि कृत योगदर्शन एवं उसके व्यास भाष्य की सरल, सुबोध एवं हृदयग्राही टीका एवं उसके जिन-जिन सूत्रों पर महर्षि दयानन्द सरस्वती का भाष्य उपलब्ध था, उसका भी यथास्थान समावेश करके इस गम्भीर दार्शनिक ग्रन्थ को पाठकों के लिए अत्यन्त सरल बना दिया।

- ईश केन एवं कठ उपनिषदों का भाष्य सरलतम रूप से प्रस्तुत करना भी आप सरीखे मनीषी का कार्य था।

- आपकी सेवा, आपकी योग्यता एवं वैदिक धर्म के प्रति आपकी निष्ठा का वर्णन कर पाना इस लेख में कदापि सम्भव नहीं है। हम पुनः उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए अपनी विनम्राजंलि अर्पित करते हैं। ❑❑

इतिहास बताती कहानियाँ

(राजेशार्य आट्टा)

प्रिय पाठकवृन्द! पंचतंत्र में एक कहानी है- एक कुएँ में परिवार साहित रहने वाला मेंढक गंगदत्त अपने वंश के हिस्सेदारों से परेशान होकर कुएँ से बाहर आया और अपने हिस्सेदारों का विनाश करने के लिए प्रियदर्शन नाम के साँप को मित्र बनाकर कुएँ में ले गया। वहाँ जाकर साँप ने उसके शत्रुओं को मारकर खा लिया। शत्रुओं की समाप्ति होने पर गंगदत्त के परिजनों को भी मार डाला। फिर गंगदत्त पछताने लगा- 'अरे, इस जाति-शत्रु को बुलाकर मैंने यह क्या कर डाला!'

इस कहानी को पढ़ते-पढ़ाते समय मुझे ऐसा लगता था कि यह मात्र साँप-मेंढक की कहानी नहीं, अपितु मेरे देश भारत का इतिहास है। ऐसी ही एक कहानी बचपन में सुना करते थे- पंडित, लाला, ठाकुर और कहार आदि चार मित्रों ने एक किसान के खेत से गन्ने उखाड़े और चूसने लगे। अकेला किसान इन चारों से भिड़ने में असमर्थ था। उसने भेद नीति का प्रयोग कर पहले तीन की प्रशंसा कर कहार को पीटा। फिर दो की प्रशंसा कर ठाकुर को पीटा। फिर पंडित की प्रशंसा कर लाला को पीटा ओर अन्त में पंडित जी को भी पीट दिया। जब कोई एक पिटता तो बाकी सब खड़े देखते रहे। कहानी सुनकर मैं मायूस सा हो जाता था कि एक आदमी से चारों पिट गये। जब इतिहास पढ़ा, तो मुझे उस कहानी की सच्चाई का अनुभव हुआ। और मैं स्वयं को उन स्वार्थी लोगों (राजाओं) की नादानी पर आँसू बहाने से नहीं रोक सका, जिनकी करतूत से राष्ट्र पतन (पराधीनता) के गर्त में गिरा।

मुहम्मद बिन कासिम ने जब (712 ई०) सिन्ध पर आक्रमण किया, तो हिन्दू राजा से द्वेष रखने वाले बौद्ध बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा होगा कि जिस प्रकार पहले मिन्यांडर, कनिष्क आदि विदेशी राजाओं ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर भारत में बौद्ध राज्य की स्थापना की थी, उसी प्रकार ये नये धर्म वाले (मुसलमान) भी वैसा ही करेंगे। अतः जैसे ही कासिम ने सिन्ध की देवल बन्दरगाह को जीता, तो बौद्ध नेताओं ने उसका स्वागत करते कहा- "दाहिर वैदिक धर्मी राजा है। उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा और उनका धर्म अलग है। हम शस्त्र धारण कर राज्यों के संघर्ष में हिस्सा नहीं लेते। आप विजयी हुए हैं तो आप ही हमारे राजा हैं। आप लोग हम बौद्धों को किसी प्रकार का कष्ट न दें।"

कासिम से अभयदान पाकर बौद्ध प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से उसकी सहायता (देशद्रोह) करने लगे। उनके सहयोग के बिना शायद कासिम सफल न होता। राजा दाहिर मारा गया और सिन्ध इस्लाम के कब्जे में आ गया। अंतिम युद्ध जीतते ही मुसलमानों ने हिन्दुओं की तरह बौद्धों का भी अधिक निष्ठुरतापूर्वक वध किया। बोद्ध विहारों और बस्तियों में सशस्त्र प्रतिकार का सामना होने का भय न होने के कारण मुसलमानों ने बौद्धों को गाजर-मूली की तरह काट डाला। जो कुछ मुसलमान बन गये, वे ही जीवित बच सके। समस्त सिन्ध में फैले विहारों की अनेकानेक मूर्तियाँ मुसलमानों ने तोड़ डालीं। गांधार, काम्बोज आदि प्रदेशों में जहाँ बहुसंख्यक बौद्ध थे, एक भी बौद्ध शेष न रहा। सभी मुसलमान बन गये।

1197 ई० में मुहम्मद गोरी के सेनापति बख्तियार खिलजी ने थोड़े से सैनिकों के साथ बंगाल-बिहार को रौंद डाला, क्योंकि वहाँ अधिकतर बौद्ध थे। नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालयों के हजारों विद्यार्थियों, शिक्षकों और बौद्ध भिक्षुओं को काट डाला व पुस्तकालयों में आग लगा दी। वीर सावरकर ने लिखा है- "बख्तियार खिलजी के आक्रमण का समाचार पाते ही बिहार के

बहुत से बौद्ध अपने प्राण और धर्मग्रन्थ बचाने के लिये अनेक ग्रन्थ लेकर चीन की ओर भाग गये। जो बचे, वे भ्रष्ट कर (मुसलमान बना) दिये गये और जो अपने धर्म पर अड़े रहे, वे शहीद हो गये; परन्तु युद्ध किसी ने नहीं किया। इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता, कि बौद्धों के किसी समुदाय अथवा सेना ने संगठित होकर समर-भूमि में मुसलमानों का सामना किया हो अथवा कोई उल्लेखनीय लड़ाई लड़ी हो।" (भा०इ० के छः स्वर्णिम पृष्ठ भाग 2 पृ० 20)

मुहम्मद गोरी के नेतृत्व में जब इस्लाम ने भारत की राजनीति को प्रभावित किया, तो यहाँ बड़े-बड़े योद्धा थे, पर सभी एक-दूसरे को पिटता देखते रहे। लोककथाओं के आधार पर समाज में यही प्रचलित है कि तराई की पहली लड़ाई में पृथ्वीराज चौहान से पराजित होकर भागे मुहम्मद गौरी को, पृथ्वीराज से शत्रुता के कारण, जयचन्द ने पुनः आक्रमण करने का निमन्त्रण भेजा और उसकी सहायता कर पृथ्वीराज चौहान को मरवाया, पर वर्तमान इतिहासकार इसे सत्य नहीं मानते। हाँ, इतना अवश्य है कि तराइन की दूसरी लड़ाई में जयचन्द ने पृथ्वीराज चौहान का साथ नहीं दिया। युद्ध में पृथ्वीराज मारा गया। इसके साथ ही भारत की लम्बी दासता आरम्भ हो गई।

1194 ई० में मुहम्मद गोरी ने कन्नौज पर आक्रमण कर दिया। जयचन्द ने अन्त समय तक वीरतापूर्वक लड़ते हुए वीरगति पाई, पर इस समय बुन्देलखण्ड के चन्देल राजपूत पूर्णतया उदासीन रहे। वे जयचन्द के साथ खड़े होते, तो गौरी गुजरात (1178 ई०) व तराइन की पहली लड़ाई (1191 ई०) की तरह पिटकर भागता और देश पराधीन होने से बचता। 1202-03 ई० में मुहम्मद गौरी के सेनापति कुतुबुद्दीन एबक ने चन्देल राजा परमर्दी देव की राजधानी कालिंजर पर आक्रमण कर दिया। राजपूत वीरों ने डटकर लोहा लिया, पर खाद्य सामग्री के अभाव में उन्हें सन्धि करने के लिए मजबूर होना पड़ा। मध्य भारत के लगभग सभी राजा एक-एक कर हारते रहे और देश की गुलामी का इतिहास लिखते रहे, पर बाद वालों ने भी उस इतिहास से कुछ नहीं सीखा।

इसी प्रसंग से जुड़ी एक कहानी कभी पढ़ी थी, जो भारत की गुलामी के कारणों पर अच्छा प्रकाश डालती है- कहते हैं कि बाबर जब भारत पर आक्रमण करने आया, तो वह सीमा पर ही कुछ दिन पड़ा रहा। उसने यहाँ के लोगों के व्यवहार को जानने के लिए घोड़े पर सीमा पार की। भारत की सीमा के अन्दर आने पर भी उसे किसी ने रोका-टोका नहीं। चारों ओर भारतवालों के खेत फैले हुए थे। बाबर ने अपना घोड़ा उन्हीं में से एक खेत में चरने के लिए छोड़ दिया। पास के खेतों में कई किसान फसल काट रहे थे। उन्होंने देखकर भी उस घोड़े को नहीं भगाया। बाबर ने उनके पास जाकर पूछा- 'घोड़ा खेत में अनाज खा रहा है और तुम उसे मारते या भगाते भी नहीं, क्या बात है?'

तब वे बोले- 'हम क्यों भगाएँ? खेत हमारा नहीं, पड़ोसी का है। उसे घोड़ा खायें या हिरण, हमें क्या करना?'

यह सुनकर बाबर ने सोचा कि यहाँ के लोगों में आपस में प्रेम और मेल-जोल नहीं है। अतः इनमें फूट डाल देना कोई कठिन काम नहीं है।

प्रबुद्ध पाठक जानते हैं कि यह वही बाबर था, जिसका अपना राज्य फरगाना व सिमरकन्द (काबुल) भी उसके हाथ से तीन-तीन बार निकल चुका था, फिर भी भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक बन गया।

इस विदेशी व विधर्मी आक्रान्ता बाबर को भारत से बाहर भगाने के लिए मेवाड़ के महाराणा सांगा ने हिन्दू राजाओं का संगठन बनाया। राजपूतों की वीरता के किस्से सुनकर बाबर की सेना के दिल बैठ गये। उन्होंने युद्ध करने से मना कर दिया। बाबर के जेहादी नारे और रायसिन के सिलहदी की गद्दारी के करण महाराणा साँगा हार गये। कुछ समय बाद (जनवरी 1528 ई०) उनकी मृत्यु हो गई।

महाराणा के मरने से पहले ही हाड़ी रानी कर्मवती ने अपने 'विशेष प्रेम' को आगे करके महाराणा को

मेवाड़ का विस्तृत साम्राज्य बाँटने के लिए तैयार कर लिया। उसके दोनों पुत्रों (विक्रमादित्य व उदयसिंह) को रणथम्भौर का किला व उसके आस-पास के परगने दे दिये। यह बात राणा साँगा के बड़े बेटे (मारवाड़ की धनकँवर से उत्पन्न) रतनसिंह को बहुत अखरी। राणा बनने के बाद उसने रणथम्भोर को मेवाड़ मे मिलाने के लिए दो प्रतिष्ठित सामन्तों को सन्देश देकर रणथम्भौर भेजा, परन्तु रानी कर्मवती व उसके भाई सूर्यमल्ल ने रतनसिंह की बात नहीं मानी। रानी के मन में यह भय पैदा हो गया कि रतनसिंह उस पर हमला करेगा। अतः उसने इससे बचने के लिए राणा साँगा के सबसे बड़े शत्रु बाबर को ही अपना सहायक बनाने का प्रपंच रचा। उसकी सहायता के बदले महाराणा साँगा का रत्नजटित मुकुट (जिसे महाराणा ने मालवा के सुल्तान महमूद को हराकर उससे प्राप्त किया था) देने का वादा कर दिया। (आगे चलकर हुमायूँ को राखी भी भेजी थी) भाग्यवश बाबर की मृत्यु होने से ऐसी सहायता उपलबध नहीं हो सकी, अन्यथा मेवाड़ का गौरव मिट्टी में मिल जाता। कुछ समय बाद (1531 ई०) रानी कर्मवती का भाई सूर्यमल्ल और राणा रतनसिंह शिकार करते हुए चित्तौड़-बूंदी सीमा के जंगल में मिले और एक दूसरे से ऐसे भिड़े कि दोनों की जीवन-लीला समाप्त हो गई।

इसके बाद मेवाड़ की गद्दी पर रानी कर्मवती का अयोग्य व असभ्य बेटा विक्रमादित्य बैठा, जिसके दुर्व्यवहार से परेशान होकर मेवाड़ के ही कुछ सरदारों ने मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए गुजरात के बहादुरशाह को प्रेरित किया। यह वही बहादुरशाह था, जो 1524 ई० में अपने भाई सिकन्दर से भयभीत हुआ महाराणा साँगा की शरण में आया था। फिर इसी नीच कृतघ्न ने दो बार आक्रमण कर मेवाड़ को तबाह किया। बाद में दुष्ट बनवीर ने विक्रमादित्य की भी हत्या कर दी व उदय सिंह की रक्षा के लिए माता पन्ना धाय को अपना बेटा कटवाना पड़ा। यदि रानी कर्मवती ने रतनसिंह का सुझाव माना होता, तो मेवाड़ को ये दुर्दिन नहीं देखने पड़ते।

हुमायूँ के भाई कामरान को बुरी तरह हराकर इतिहास का एक गौरवशाली पृष्ठ लिखा था, बीकानेर के राव जैतसी ने। घटना के 30 वर्ष बाद (1564 ई०) लिखे 'राव जैतसी रो छन्द' में कवि बीठूँ-सूजी ने इस युद्ध का सजीव वर्णन किया है। उसी के आधार पर डॉ० गोपीनाथ शर्मा ने 'राजस्थान का इतिहास' में लिखा है कि बाबर की मृत्यु के बाद उसके बेटे कामरान को लाहौर का क्षेत्र मिला था। राज्य विस्तार की इच्छा से बीकोनेर के सुदृढ़ किले भटनेर (हनुमानगढ़) को लेने की योजना बनाई। 1534 ई० में कामरान भटनेर के पास आ पहुँचा और किले को चारों ओर से घेर लिया। कांधल के पौत्र खेतसी के नेतृत्व में राजपूत वीर मुगल सेना का मुकाबला करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। भटनेर मुगलों के अधीन हो गया। भटनेर को जीतकर कामरान ने बीकानेर के राव जैतसी को अधीनता स्वीकार करने का सन्देश भेजा। जैतसी ने कामरान के दूत को लौटा दिया ओर उसे युद्ध में निपटने के लिए आमन्त्रित किया। ज्यों ही मुगलों की फौजें बीकानेर के पुराने गढ़ को लेने के लिए आगे बढ़ीं, तो भोजराज के रूपावत के नेतृत्व में कुछ भाटियों को कामरान का मुकाबला करने के लिए छोड़कर जैतसी बीकानेर से दूर जाकर अपनी शक्ति का संगठन करने लगा। कामरान ने अपनी बची हुई सभी शक्ति बीकानेर के लेने में लगा दी।

बीकानेर के आस-पास बहुत बड़ी सेना एकत्रित कर राव जैतसी ने 26 अक्तूबर 1534 ई० की रात्रि को कुछ चुने हुए वीरों को साथ लेकर शत्रु पर हमला बोल दिया। इस प्रबल हमले का सामना मुगल न कर सके। उन्हें गढ़ छोड़कर भाग जाना पड़ा। महाराणा कुम्भा की युद्ध-नीति को अपना कर राव जैतसी ने अपने अद्भुत युद्ध-चातुर्य का परिचय दिया।

अब इसका दूसरा पक्ष देखिये- जब मेवाड़ अपने दुर्दिन से उभरने के लिए छटपटा रहा था, तब विदेशी सत्ता से टक्कर लेने की क्षमता मारवाड़ में ही थी। मारवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में जोधपुर के संस्थापक राव

जोधा के वंशजों का ही शासन था। हुमायूँ जैसे बादशाह जोधपुर के शासक राव मालदेव की सहायता चाहते थे और शेरशाह सूरी जैसे योद्धा से टकराने की हिम्मत भी जोधपुर रखता था, पर अपनी महत्त्वाकांक्षा और विलासिता के कारण राव मालदेव ने मेवाड़ से तो सम्बन्ध बिगाड़े ही, अपने खानदान से भी सम्बन्ध बिगाड़ लिये।

वीरम पर आक्रमण कर मालदेव ने मेड़ता को अपने अधिकार में कर लिया। वीरम अजमेर चला गया और मेड़ता को प्राप्त करने के लिए कई बार प्रयास किया। मालदेव के सैनिकों ने उसे अजमेर भी छोड़ने को विवश कर दिया। कई बार प्रयास करने पर भी जब उसे मेड़ता नहीं मिला, तो वह मलारणे के मुसलमान थानेदार से मिला और उसकी सहायता से रणथम्भौर के हाकिम के पास गया, जो उसे शेरशाह सूरी के पास ले गया।

1542 ई० के मालदेव ने सरदार कूँपा की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना बीकानेर पर आक्रमण करने भेजी। राव जैतसी ने बेटे कलयाणमल सहित राज परिवार को सिरसा नगर में सुरक्षा के लिए भेज दिया और स्वयं मालदेव की सेना का मुकाबला करने के लिए साहेबा के मैदान में पहुँचा। उस शक्तिशाली सेना के सामने वह टिक न सका और अनेक योद्धाओं के साथ वीरगति को प्राप्त हो गया।

जैतसी का पुत्र कलयाणमल सिरसा में रहते हुए अपने पैतृक राज्य को प्राप्त करने का उद्योग करता रहा। इधर ज्यों ही शेरशाह मालदेव पर आक्रमण की तैयारी में लगा हुआ था कि कल्याणमल का मंत्री नगराज शेरशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उससे अपने स्वामी की सहायता के लिए चलने की प्रार्थना की। जब 1544 ई० में शेरशाह सूरी ने मालदेव के विरुद्ध प्रस्थान किया, तो कल्याणमल और वीरम (मेड़ता) भी उसकी सेना के साथ थे। यदि राव जैतसी और मालदेव अपनी संयुक्त शक्ति का प्रयोग उस समय के उदीयमान शेरशाह की शक्ति के ह्रास के लिए करते, तो भारतवर्ष का इतिहास कुछ और होता।

अपने समय का अद्वितीय योद्धा राव मालदेव अपनी मृत्यु (1562 ई०) से पूर्व राणा साँगा की तरह गलती कर बैठा। अपने बड़े पुत्रों (राम व उदयसिंह) को राज्य से वंचित कर तीसरे बेटे चन्द्रसेन को जोधपुर की गद्दी दे दी। इससे नाराज होकर राम, उदयसिंह और रायमल संगठित होकर उपद्रव करने लगे। चन्द्रसेन ने उनके उपद्रव को शान्त कर दिया, तो 1564 ई० में राम अकबर के दरबार में जा पहुँचा और शाही सहायता की प्रार्थना की। आपसी फूट का लाभ उठाकर अकबर ने शीघ्र ही हुसैन कुली खाँ के नेतृत्व में सेना भेजकर जोधपुर पर अपना कब्जा कर लिया। राव चन्द्रसेन निर्वासित होकर विद्रोह करता रहा। उसकी आर्थिक अवस्था बहुत दयनीय हो चुकी थी। अतः 1570 ई० में अजमेर जाते समय जब अकबर नागौर में ठहरा, तो अपने भाइयों की तरह राव चन्द्रसेन भी अपनी स्थिति सुधारने के लिए अकबर के दरबार में उपस्थित हुआ, पर राव चन्द्रसेन ने देखा कि अकबर एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध खड़ा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, तो वह अकबर के दरबार से चल दिया। अकबर ने मालदेव के किसी भी पुत्र को मारवाड़ का शासक नहीं माना, परन्तु प्रत्येक को इस प्रकार आश्वासन दिया कि वे अकबर को अपना शासक मानकर मुगल गतिविधि के पोषक बन गये।

अकबर के राव चन्द्रसेन को नष्ट करने के संकल्प को पूरा करने में उदयसिंह आदि ने बढ़चढ़कर भाग लिया। राव चन्द्रसेन की मृत्यु (जनवरी 1581 ई०) के बाद 1583 ई० में उदय सिंह को अकबर ने मारवाड़ (जोधपुर) का राज्य दिया। सम्भवतः इसी अहसान के कारण उसने अपनी बेटी मानी बाई (जोधाबाई) का विवाह अकबर के बेटे जहांगीर से किया था। हाय! शेरशाह सूरी के सामने शेर की तरह निडर होकर डटने वाले योद्धा के पुत्रों का इतना पतन!

प्रिय पाठकवृन्द! मेंडक और साँप की घटनाओं से हमारे देश का इतिहास भरा पड़ा है। संकेत रूप में ये कुछ घटनाएँ यहाँ लिखी हैं।

❑❑

देश की अवनति का कारण

(डॉ. विवेक आर्य)

मैं अनेक बार यह सोचता हूँ कि वैदिक विचारधारा को मानने वाला यह सुन्दर देश आर्यवर्त अनेक शताब्दियों तक कैसे गुलाम बना। क्या कारण था जो संसार को मार्ग दिखाने वाली यह प्राचीन आर्य सभ्यता स्वयं भटक गई। अनुसन्धान करने पर जो कारण मिला उसे एक शब्द में आप 'निराशावाद कह सकते हैं। एक उदाहरण से निराशावाद को समझने का प्रयास करते हैं।

वेद में हमारे शरीर का सुन्दर वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के 10/2/31 मंत्र में इस शरीर को 8 चक्रों से रक्षा करने वाला (यम, नियम से समाधि तक) और 9 द्वार (दो आँख, दो नाक, दो कान, एक मुख, एक मूत्र और एक गुदा) से आवागमन करने वाला कहा गया है, जिसके भीतर सुवर्णमय कोष में अनेक बलों से युक्त तीन प्रकार की गति (ज्ञान, कर्म और उपासना) करने वाली चेतन आत्मा है। इस जीवात्मा के भीतर और बाहर परमात्मा है और उसी परमात्मा को योगी जन साक्षात करते हैं। शरीर का यह अलंकारिक वर्णन राज्य विस्तार एवं नगर प्रबंधन का भी सन्देश देता है। शरीर के समान राज्य की भी रक्षा की जाये। वैदिक आध्यात्मवाद जिस प्रकार शरीर को त्यागने का आदेश नहीं देता वैसे ही नगरों को भी त्यागने के स्थान पर उन्हें सुरक्षित एवं स्वर्गसमान बनाने का सन्देश देता है। वेद बुद्धि को दीर्घ जीवन प्राप्त करके सुखपूर्व रहने की प्रेरणा देते हैं। वेद शरीर को अभ्युदय एवं जगत को अनुष्ठान हेतु मानते थे। वैदिक ऋषि शरीर को ऋषियों का पवित्र आश्रम, देवों का रम्य मंदिर, ब्रह्मा का अपराजित मंदिर मानते थे।

महात्मा बुद्ध के काल में शरीर को पीप-विष्ठा-मूत्र का गोला कहा जाने लगा। विश्व को दुःख, असार, त्याज्य, हेय, निस्सार, कष्टदायी माना जाने लगा ओर अकर्मण्यता एवं जगत के त्याग का भाव दृढ़ होने लगा। कालांतर में उपनिषदों और गीता में यही जगतदुःखवाद का भाव लाद दिया गया। भारतीयों की इच्छा जगत को स्वर्ग बनाने के स्थान पर त्याग करने की होने लगी। अकर्मण्यता के साथ निराशावाद घर करने लगी इससे यह भावना दृढ़ हुई कि इस दुःखमय संसार में मलेच्छ राज्य करे या कोई और करे हमें तो उसका त्याग ही करना है। ऐसे विचार जिस देश में फैले हों वह देश सैकड़ों वर्षों क्या हजारों वर्षों तक भी पराधीन रहे तो क्या आश्चर्य की बात है।

जब तक इस प्रकार के निराशावादी विचारों को भारतीय अपने मस्तिष्क में स्थान देते रहेंगे, तब तक भारत कभी उन्नति नहीं कर सकता। अगर कोई मुझसे पूछे कि स्वामी दयानंद की हिन्दू समाज को क्या देन हैं, तो मेरा उत्तर यही है कि स्वामी दयानंद इस घोर निराशावादी विचारधारा के सबसे बड़े शत्रु थे और प्रगतिशील, निष्पक्ष एवं संकीर्ण मानसिक विचारों के मुक्ति प्रदाता थे। आइये, इस निराशावाद के चक्र से निकलें एवं आध्यात्मिक, आधिभौतिक उन्नति करते हुए संसार में फिर से आर्यावर्त का नाम रौशन करें।

❑❑

मण्डन के साथ साथ खण्डन भी क्यूँ आवश्यक है?

(डॉ. विवेक आर्य)

एक पाठक ने मेरे लेख कलियुग में भगवानों का जुलूस पर प्रतिक्रिया दी है कि आपने साईं बाबा का खंडन कर उनके करोड़ों भक्तों का दिल दुःखाया है। आपको खण्डन नहीं करना चाहिए, केवल मण्डन करना चाहिए। एक उदाहरण देकर मैं अपनी बात को आरम्भ करना चाहता हूँ। एक आर्यसमाजी अध्यापक से यह शंका एक छात्र के अभिभावक महाशय ने की थी। अध्यापक ने उत्तर दिया कि इसका उत्तर समय आने पर आपको मिलेगा। संयोग से दो दिन के पश्चात् ही उस छात्र की परीक्षा थी। अध्यापक ने उस छात्र की उत्तर पुस्तिका में सभी गलत प्रश्नों को भी सही कर दिया और उसे अभिभावक को दिखाने के लिए कहा। अभिभावक ने जैसे ही उत्तर पुस्तिका में सभी गलत उत्तरों को सही देखा तो अगले दिन अध्यापक से वे मिलने आये। जब उन्होंने गलत उत्तर को भी सही करने का कारण पूछा तो आर्य अध्यापक ने बड़े प्रेम से उत्तर दिया। महाशय जी आप ही ने तो कहा था कि खण्डन मत किया करो केवल मण्डन किया करो, मैंने आप ही की बात का तो अनुसरण किया है। आपके बेटे के सभी सही के साथ-साथ गलत उत्तर को भी सही कर दिया, किसी का भी खण्डन नहीं किया। धार्मिक जगत में भी धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ और असत्य बातों का समावेश कुछ अज्ञानी लोगों ने कर दिया है, यह कुछ-कुछ ऐसा है, जैसा कि एक किसान के खेत में फसल के साथ खरपतवार का भी उग जाना, अब आप बताएँ कि अगर किसान उस खरपतवार को नहीं हटायेगा, तो उसकी फसल का क्या हाल होगा? हिन्दू समाज में आध्यात्मिकता का भी यही हाल है, नाना प्रकार के अन्धविश्वास, नाना प्रकार के मिथ्या प्रपंच, नाना प्रकार के गुरुडम के खेल, नाना प्रकार की देव देवताओं के नाम पर कहानियाँ रच ली गई हैं, जिनका सत्य से दूर-दूर तक भी किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। उनका अगर खण्डन नहीं करेंगे, तो क्या करेंगे? महाशय जी चुप हो गये, उन्होंने सोचा कि बात तो सही है, खण्डन करना चाहे कड़वा हो मगर है तो आवश्यक।

यही शंका हमारे कुछ हिन्दू भाइयों को स्वामी दयानन्द से रहती है कि स्वामी जी को हिन्दू समाज की आस्था का खण्डन नहीं करना चाहिए था। स्वामी जी का उद्देश्य किसी की आलोचना अथवा विरोध करना नहीं था, अपितु जो कुछ भी सत्य है उसका मंडन और जो कुछ भी असत्य है उसका खण्डन करना था। स्वामी जी से पूर्व भी अनेक आचार्यों ने समाज में सुधार की अपेक्षा से असत्य का खण्डन किया था। जैसे आदि शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट, संत कबीर, संत दादू, समर्थ गुरु रामदास, गुरु नानक आदि। हिन्दू समाज में गीता को विशेष मान प्राप्त है। कुरुक्षेत्र में महाभारत के युद्ध में अर्जुन के विचलित मन को ज्ञानामृत से तृप्त कर, अर्जुन की पिपासा को शांत करने वाले महान श्री कृष्ण जी महाराज ने गीता में स्पष्ट रूप से पाखण्ड का पुरजोर खण्डन किया है।

गीता के16/4 श्लोक में श्री कृष्ण जी कहते हैं "पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता तथा अज्ञान असुरी सम्पत अर्थात् बन्ध का कारण हैं, जबकि इसी अध्याय के 16/1-3 श्लोक में अभय, अंतःकरण की

शुद्धि, ज्ञान, योग, दान, दम, स्वाध्याय, तप ऋजुता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, चुगली न करना, प्राणियों पर दया, लोलुपता का अभाव, कोमलता, चपलता का अभाव, तेज क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह और निरभिमान दैवी सम्पत अर्थात् मोक्ष का कारण हैं। गीता का पाठ करने वाला, गीता की पोथी बगल में दबाने वाला, गीता की कथा सुनाने वाला, गीता सुनने वाला, गीता रटने वाला, गीता का प्रचार करने वाला, गीता बाँटने वाला, गीता लिखकर उसका लॉकेट गले में टाँगने वाले तो बहुत हैं पर गीता के इस सन्देश को जीवन में धारण करने वाले विरले ही मिलेंगे। जिसने आसुरी सम्पत को त्याग कर देवी सम्पत को नहीं अपनाया, उसकी बेड़ियाँ कभी नहीं कटेंगी? संसार के प्रत्येक भाग में पाखण्ड हैं। पाखण्डी नेता, पाखण्डी गुरु, पाखण्डी ब्राह्मण, पाखण्डी वैश्य, पाखण्डी कर्मचारी। सभी आसुरी मार्ग के अनुयायी हैं। स्वामी दयानन्द का उद्देश्य इसी आसुरी सम्पत का खण्डन और देवीय सम्पत का मण्डन था। जैसे गीता में पाखण्ड का स्पष्ट खण्डन हमें अपने अंतर्मन की शुद्धि, ज्ञान की शुद्धि, कर्म की शुद्धि, आचार की शुद्धि, व्यवहार की शुद्धि की प्रेरणा दे रहा है, वैसे ही स्वामी दयानन्द जी श्री कृष्ण जी महाराज के उपदेश को यथार्थ करने का ही उपदेश तो दे रहे हैं। यह सृष्टि का नियम है कि अज्ञानता के प्रचार-प्रसार को रोकने के लिए पाखण्ड की शल्य क्रिया करनी आवश्यक है चाहे मरीज को कष्ट हो, दुःख हो परन्तु है तो उसके हित के लिए ही। हिन्दू समाज आज पाखण्ड को त्याग कर धर्म मार्ग का पथिक बन जाये तो उसकी इतनी बुरी अवस्था सदा के लिए दूर हो सकती है।

❑❑

मेरे जीवन का अनुभव
(डॉ. विवेक आर्य)

अपने जीवन में छात्रावस्था में मुझे तमिलनाडु एवं मध्यप्रदेश में पढ़ने का अवसर मिला। चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े होने के कारण आपको एक अनुभव बताना चाहता हूँ। तमिलनाडु में लोग बीमार मरीज को हस्पताल से जबरन छुट्टी करवा कर चर्च ले जाकर प्रार्थना करवाते हैं, जबकि मध्यप्रदेश में लोग बीमार मरीज को जबरन छुट्टी करवाकर तांत्रिक के यहाँ पर झाड़ा लगवाने जाते हैं। आम लोगों की भाषा में दोनों अंधविश्वास हैं मगर दोनों में भारी अंतर है। मध्यप्रदेश के लोग अनपढ़ता एवं अज्ञानता के कारण अन्धविश्वास के फलस्वरूप तांत्रिक के पास जाते हैं, जबकि तमिलनाडु में लोग पढ़े-लिखे होने के बाद भी चर्च जाकर प्रार्थना से चंगाई रूपी अन्धविश्वास को मानते हैं। अनपढ़ता के वश अंधविश्वास का सहारा लेना अज्ञानता का प्रतीक है, जबकि शिक्षित होने के बाद भी अन्धविश्वास का सहारा लेना मूर्खता का प्रतीक है। अज्ञानी व्यक्ति में सुधार की निश्चित सम्भावना है, जबकि मूर्ख व्यक्ति में चाहे जितना जोर लगा लो, वह कभी बदलना नहीं चाहता है। खेद है कि अपने आपको ज्ञानी, विज्ञानी, तर्कशील, नास्तिक, साम्यवादी वगैरह-वगैरह कहने वाले केवल अज्ञानी लोगों के अन्धविश्वास को उजागर कर चर्चित होने में प्रयासरत रहते हैं, जबकि शिक्षित लोगों के विषय में रहस्यमय मौन धारण कर लेते हैं।

पाठक प्रतिक्रिया दें।

❑❑

शिक्षक दिवस

(काली चरन आर्य, 26, के.जी. रोड, बुलन्दशहर-203001)

भारतीय संस्कृति में माता-पिता के बाद गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि गुरु ही बच्चे को होनहार, चरित्रवान, संस्कारवान और श्रेष्ठ बनाता है। शिक्षक को अध्यापक - गुरुजी - प्राध्यापक - आचार्य - मास्टर साहब - टीचर भी कहा जाता है। सरकारी स्तर पर और विद्यालय स्तर पर 5 सितम्बर को शिक्षकों को सम्मानित करते हुए पुरस्कृत भी किया जाता है। हमने भी कुछ वर्ष पूर्व प्राध्यापक राम सिंह अग्रवाल शिक्षक पुरस्कार आरम्भ किया था जो अभी तक कई शिक्षकों को दिया जा चुका है।

यह अति महत्वपूर्ण बात है कि शिक्षकों के वेतन में जो भारी अन्तर है, वह ज्यों का त्यों ही है। समान शैक्षिक योग्यता होते हुए, समान कार्य करने वालों का वेतन वास्तव में तो समान ही होना चाहिए। जबकि अन्तर 7-8 गुना तक है। एक को 35-40 हजार मिल रहे हैं जबकि दूसरे को केवल 5-6 ही मिलते हैं। सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में वेतन बहुत ज्यादा है जबकि निजी स्कूलों में वेतन बहुत कम है। समाजवाद-साम्यवाद पर चलने वाले दलों में कथनी और करनी में बहुत ज्यादा अन्तर है। ऐसा क्यों? हमारी माँग है कि भविष्य में वेतन-भत्ता वृद्धि केवल उन्हीं शिक्षकों की हो, जिन्हें वेतन बहुत कम मिल रहा है, ऐसा करते रहने से वेतन की असमानता धीरे-धीरे कम होती जाएगी।

संविधान की धारा 39(घ) में स्पष्ट लिखा है कि "पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो।" सभी दलों को व सरकारों को संविधान के निर्देश का पालन करना चाहिए। कम वेतन पाने वाले शिक्षकों की यूनियन मजबूत नहीं है और उनके पास अति प्रभावशाली नेता भी नहीं हैं। अतः सरकारें उनकी उपेक्षा करती ही रहती हैं। हमारी पूरी सहानुभूति कम वेतन पाने वालों के साथ है।

एक कक्षा में छात्र-छात्राओं की अधिकतम संख्या 50 होनी चाहिए जबकि कई स्कूलों में 100 से भी अधिक है। एक शिक्षक 100 से अधिक छात्रों को कैसे पढ़ा सकता है? अतः मजबूरी में छात्रों को ट्यूशन लगानी पड़ती है। कहीं-कहीं शिक्षक अप्रत्यक्ष रूप से छात्रों को ट्यूशन लगाने को मजबूर भी करता है। यह प्रवृत्ति सही नहीं है।

❑❑

हिन्दी दिवस

(इन्द्रदेव, 18/186, टीचर्स कॉलोनी, -203001)

14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा ने हिन्दी को स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया किन्तु अंग्रेजी को 26 जनवरी 1965 तक राष्ट्रभाषा के रूप में बनाए रखने की सहमति दी। अहिन्दीभाषी प्रदेशों के नेता भी सहमत थे। चूँकि हिन्दी को उसका उचित स्थान दिलाने के लिए सभी स्तरों पर अच्छे ढंग से प्रयास ही नहीं किए गए इसलिए दक्षिणी राज्यों के दबाव में आकर नेहरू सरकार ने अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए देश की सह राष्ट्र-भाषा का दर्जा कानून बनाकर दे दिया। देश में 28 राज्य हैं, जिनमें हिन्दीभाषी राज्यों की संख्या नौ है। बिहार-झारखण्ड तथा उत्तर प्रदेश में उर्दू को द्वितीय राज भाषा का दर्जा

दे दिया गया है।

महाराष्ट्र में राज ठाकरे तथा उद्धव ठाकरे के दल हिन्दीभाषियों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, जो निन्दनीय है क्योंकि वीर सावरकर आदि सदैव हिन्दी के प्रबल समर्थक रहे हैं और देश का महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय 1997 में राज्य के वर्धा शहर में खोला गया।

पिछले कई वर्षों से यह देखने मे आ रहा है कि हिन्दीभाषी राज्यों में अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों-कालेजों में ही पढ़वाया जा रहा है इसीलिए उ०प्र० हाईस्कूल व इन्टरमीडिएट शिक्षा बोर्ड ने अंग्रेजी माध्यम से भी परीक्षा लेने की व्यवस्था की है।

उत्तर प्रदेश सबसे बड़ा हिन्दी प्रदेश है। मुलायम सिंह हिन्दी के प्रबल समर्थक हैं किन्तु हिन्दी प्रेमियों-समर्थकों का कोई बड़ा अथवा प्रभावशाली संगठन नहीं है इसलिए यहाँ अंग्रेजी-उर्दू को बढ़ावा देने का कोई विरोध नहीं होता है। राज्य में देवबन्द-अलीगढ़ में उर्दू अरबी-फारसी को बढ़ावा दिया जाता रहा है। अब केन्द्र सरकार अलीगढ़ विश्वविद्यालय की 5 शाखाएँ अन्य राज्यों में खोल रही है, जहाँ इन्टर-बी०ए० में उर्दू पढ़ना अनिवार्य है। सरकारी पैसों से मुलायम सिंह ने रामपुर में और मायावती ने लखनऊ में विश्वविद्यालय बनवाए हैं, जहाँ उर्दू-फारसी-अरबी को महत्व दिया जायेगा। इन चारों विश्वविद्यालयों में हिन्दी को कोई स्थान नहीं मिलेगा। अतः हिन्दी का भविष्य उज्जवल नहीं है इसलिए हिन्दी प्रेमी समर्थक संगठित होकर राज्य के अहिन्दीकरण को रोकें।

❑❑

सरदार पटेल जयन्ती दिनांक 31 अक्टूबर 2013

(लक्ष्मेन्द्र गुप्ता, बुलन्दशहर)

(1) उनके गुण-कर्म-स्वभाव के कारण जनता ने आपको लौह पुरुष की उपाधि दी थी।

(2) आपने 561 रियासतों का विलय भारत में कराया जिनमें कोई विवाद नहीं है।

(3) यदि जम्मू-कश्मीर रियासत को विलय कराने की जिम्मेदारी भी आपको दी गई होती तो विलय करने के बाद कोई विवाद ही नहीं होता क्योंकि आप पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों को रियासत में बसाना चाहते थे और किसी हिन्दू को राज्य का मुख्यमंत्री बनाना चाहते थे।

(4) आपने नेहरू से स्पष्ट रूप से कहा था कि वे राज्य की बागडोर शेख अब्दुल्ला को सौंपकर भयंकर गलती कर रहे हैं।

(5) आपने नेहरू और गांधीजी के विरोध की परवाह न करते हुए सोमनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार कराया।

(6) आपने जूनागढ़ और हैदराबाद के नवाबों के साथ सख्त व्यवहार करके इन रियासतों को भारत में मिलाया अन्यथा ये पाकिस्तान में विलीन हो जाते अथवा स्वतंत्र देश बन जाते।

(7) आपने कहा था कि देश में केवल एक मुस्लिम ही राष्ट्रवादी है, जिसका नाम है जवाहर लाल नेहरू।

(8) आपका स्वर्गवास 1950 में हो गया यदि और 10 साल आप जीवित रहते तो अयोध्या - मथुरा - वाराणसी - भोजशाला के मन्दिरों का भी जीर्णोद्धार अवश्य हो जाता।

(9) आप ईंट का जवाब पत्थर से देना पसन्द करते थे।

(10) आपने कहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय नियमों और नेहरू-लियाकत संधि के फलस्वरूप यदि पूर्वी पाकिस्तान के अल्पसंख्यक हिन्दुओं की रक्षा नहीं होती है तो हम 20000 वर्गमील जमीन पूर्वी पाकिस्तान से लेकर वहाँ इन्हें बसाएंगे।

(11) आज देश को पटेल जैसे नेता की सख्त आवश्यकता है ताकि समस्याएँ हल हों।

❑❑

गांधी का जन्म दिवस

राम अवतार यादव, प्रचार मंत्री, सावरकर वाद प्रचार सभा

आपने मुस्लिम लीग को महान संगठन की उपाधि दी। जिन्ना को कायदे आजम - सुहरावर्दी को शहीद - अब्दुल रशीद को भाई ओर मोपला विद्रोहियों को धर्मनिष्ठ की उपाधि दी। आपने सभी हिन्दू क्रान्तिकारियों का अपमान किया। आपने दिल्ली में 1925 में जामिया मिलिया इस्लामिया की आधार शिला रखी थी जो अब केन्द्रीय विश्वविद्यालय है। गाँधी जी हिन्दू महासभा - अकाली दल - राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और आर्य समाज के प्रखर विरोधी थे। उन्होंने 31 जुलाई 1947 को श्रीनगर जाकर महाराजा हरीसिंह से कहा कि वे जम्मू-कश्मीर रियासत का विलय पाकिस्तान में कर दें।

756 वर्षों के मुस्लिम शासन काल को वे परतन्त्रता का काल नहीं मानते थे। वे केवल 150 वर्षों के अंग्रेजों के शासन काल को ही परतन्त्रता का काल मानते थे। उन्होंने कहा कि पाकिस्तान का निर्माण उनकी लाश पर ही हो सकता है। लेकिन बाद में वह देश विभाजन के लिए सहमत हो गए। उन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा, शराबबन्दी ओर गोवध बन्दी का वायदा किया था, जो अभी तक पूरा नहीं हुआ है। उन्होंने हिन्दुओं से कहा कि 756 वर्षों के कार्यकाल में जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ।

बंटवारे में भारत को 55 करोड़ रुपए (वर्तमान मूल्य रु. 3850 करोड़) पाकिस्तान को देने थे जबकि पाकिस्तान ने 275 करोड़ रुपए (वर्तमान मूल्य रु. 19250 करोड़) भारत को देने थे। गाँधी ने अनशन करके पाकिस्तान को रुपए दिलवा दिए किन्तु पाकिस्तान ने देय राशि नहीं दी जिसे भारत सरकार ने बट्टे खाते में डाल दिया।

अप्रिय कार्य

गाँधी ने हिन्दुओं से कहा कि वे अल्पसंख्यक के रूप में पाकिस्तान में ही रहें। क्या बिल्ली और चूहे साथ-साथ रह सकते हैं? आपने जर्बदस्ती नेहरू को प्रथम प्रधनमंत्री बनवा दिया जबकि 80 प्रतिशत कांग्रेसी पटेल को पसन्द करते थे। आपने हिन्दुओं को यह आभास ही नहीं होने दिया कि भारत हिन्दू धर्म की उत्पत्ति वाला देश है। आपने 24 प्रतिशत भूमि पाकिस्तान और बंगलादेश को देने के बाद 3 करोड़ मुस्लिमों को यहीं रहने दिया। आपने सोमनाथ मन्दिर के जीर्णोद्धार का विरोध किया। सर्दी की ठंड में दिल्ली की खाली मस्जिदों में ठहरे हुए सैकड़ों हिन्दू परिवारों को पुलिस की सहायता से बाहर निकलवा दिया। राम भक्त होते हुए भी उन्होंने पत्रकारों से कहा कि पहले हिन्दू सिद्ध करें कि अयोध्या में राम मन्दिर था।

यदि देश गाँधी की नीतियों पर ही चलता रहा तो हिन्दू निश्चित रूप से घाटे में रहेंगे और खंडित भारत का प्रधानमंत्री कोई मुस्लिम और राष्ट्रपति कोई इसाई हो सकता है। अतः सावरकरवादी बनो वरना .....

❑❑

स्त्रीप्रत्यय और तद्धित

(उत्तरा नेरुरकर 9845058310)

पाणिनि की अष्टाध्यायी के बाद, कात्यायन के वार्तिक और पतंजलि के महाभाष्य को संस्कृत व्याकरण के प्रमुख प्रामाणिक ग्रन्था माना जाता है। इन दो ग्रन्थों में पाणिनि के सूत्रों की व्याख्या ही नहीं अपितु उनकी कुछ कमियों को भी पूरा किया गया है। इस प्रकार कहीं-कहीं इनमें पाणिनि सूत्रों के अपवाद भी प्राप्त होते हैं। यह भारतीय परम्परा के अनुसार ही है, जिसका स्वामी दयानन्द ने भी अनुमोदन किया कि- मनुष्य की कृति पूर्णता के समीप हो सकती है, परन्तु सौ प्रतिशत सम्पूर्णता तो, परमात्मा की कृति को छोड़ कहीं प्राप्त नहीं होती। इसी सन्दर्भ में, मैं स्त्री-प्रत्यय-प्रकरण में वार्तिक व महाभाष्य की एक कमी को उजागर कर पाणिनि के सूत्र का वास्तविक अभिप्राय रख रही हूँ। आशा है विद्वद्जन् इसको धृष्टता मानने से पहले, मेरे अभिप्राय पर विचार करेंगे।

चतुर्थ अध्याय के प्रथम पाद का प्रथम सूत्र है- ङ्याप्प्रातिपदिकात्।। 4/1/1।।- जिसका अर्थ है- इस सूत्र के अधिकार में कहे प्रत्यय ङीष् आप् व प्रतिपादिकों से लगेंगे। यहाँ ङी से ङीप्, ङीष् व ङीन् का ग्रहण किया जाता है, और आप् से टाप्, चाप् व डाप् का (जो कि मुख्य स्त्री प्रत्यय हैं), क्योंकि ङी ङीप्, ङीष् व ङीन् में समान है, और इसी प्रकार आप् टाप, चाप् व डाप् में। यह पाणिनि के प्रसिद्ध संक्षेपीकरण का उदाहरण है।

अब प्रश्न उठता है कि ङ्यन्त और आबन्त स्त्री-शब्दों को प्रातिपदिक क्यों नहीं माना गया है? इस विषय पर महाभाष्य में लम्बा विवेचन किया गया है। प्रमुख भाग मैं यहाँ देती हूँ।

1) पहले तो यह बताया गया कि स्त्री प्रत्ययों से अन्त होने वाले शब्द प्रातिपदिक नहीं कहलाते क्योंकि "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् (1/2/45)" से जो अर्थपूर्ण शब्द धातु न हों और बिना प्रत्यय के हों, उन्हें प्रातिपदिक कहा जाता है। परन्तु "कृत्तद्धितसमासाश्च (1/2/46)" से केवल कुछ विहित प्रत्यय बताए गए हैं जिनके लगने पर भी तदन्त शब्द प्रातिपदिक कहाते हैं। ये हैं - कृदन्त, तद्धित और समस्त पद। स्पष्टतः यहाँ स्त्री प्रत्यय नहीं गिनाए गए हैं। इसलिए स्त्री प्रत्ययान्तों को प्रातिपदिक मानना आचार्य पाणिनि को इष्ट नहीं प्रतीत होता।

2) तो फिर प्रश्न उठता है कि "यूनस्तिः (4/1/77)" से स्त्री प्रत्यय 'ति' ओर 'ऊङुतः (4/1/66)" से स्त्री-प्रत्यय 'ऊङ्' भी 4/1/1 में गिनाए जाने चाहिए थे, क्योंकि वे ङ्याप् में नहीं आते।

पहले का तो सरल उत्तर है- "तद्धिताः (4/1/76)" के अधिकार में पढ़े जाने से 'ति' तिद्धित है, फिर 1/2/46 से प्रातिपदिक है।

ऊङ् के विषय में पतंजलि कहते हैं कि ऊङ् का पूर्व प्रातिपदिक के अन्त से एकादेश हो जाता है। फिर अन्तादिवद्भाव से सम्पूर्ण की प्रातिपदिक सञ्ज्ञा हो जाती है। इससे प्रश्न उठता है कि तब तो ङ्याबन्त की भी इसी प्रकार प्रातिपदिक सञ्ज्ञा हो जानी चाहिए। इसके उत्तर में ङ्याप की सार्थकता अन्य सूत्रों में प्रकट करने का प्रयास होता है, जो भी खरा नहीं उतरता।

3) इसलिए वार्तिक कहती है कि 4/1/1 में ङ्याप

का ग्रहण निरर्थक है, क्योंकि प्रातिपदिकों में लिङ्ग निहित होता है। इसकी सत्यता में कई कठिन प्रमाण दिए गए हैं। मैं यहाँ कुछ सरल प्रमाण देती हूँ -

अ. "ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य (1/2/47)"- यहाँ स्पष्टतः कहा गया है कि जब प्रातिपदिक नपुंसक हो तो ह्रस्व हो जाए।

आ. उससे अगला ही सूत्र "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (1/2/48)" में उपसर्जन गो और स्त्री-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक को भी ह्रस्व होना कहा गया है।

इससे तो प्रमाणित हो गया कि स्त्री-प्रत्ययान्त भी प्रातिपदिक-सञ्ज्ञक हैं।

यह तो विप्रतिषेध उत्पन्न हो गया।

इस विप्रतिषेध को हटाने के लिए पुनरावलोकन आवश्यक है- यह मानते हुए कि ङ्याप् अनर्थक नहीं हो सकते, क्योंकि पाणिनि को न तो शास्त्र में गौरव सहनीय था, न ही उनकी बुद्धि इतनी कम थी कि वे सभी स्त्री-प्रत्ययों को प्रातिपदिक परिभाषित न कर सकें।। "कृत्तद्धितसमासाश्च (1/2/46)" सूत्र को ही वे "कृत्स्त्रीतद्धितसमासाश्च" करके बना सकते थे। तब सारा झगड़ा ही निपट जाता।

सो, इस गुत्थी को सुलझाने के लिए हमें एक ज्ञापक मिलता है। स्त्रीप्रत्ययों के प्रकरण में दो प्रत्यय तद्धित गिने गए हैं- ति (4/1/77) व ष्यङ् (4/1/78-81)। यहाँ तद्धित गिने जाने का प्रयोजन, जैसा कि ऊपर बिन्दु 2 में दिया गया, शब्द को प्रातिपदिक बनाना माना गया है। परन्तु जैसे हमने ऊपर देखा, वार्तिक ने सभी स्त्री-प्रत्ययान्तों को प्रातिपदिक ही घोषित किया है।

आगे विश्लेषण करते हुए, हम पाते हैं कि इनमें से ष्यङ् लगता तो स्त्री शब्दों में है, परन्तु तदन्त शब्द स्त्री नहीं होता। उसको स्त्री शब्द बनाने के लिए उसके आगे चाप् जोड़ना पड़ता है (4/1/74)। यथा- करीषगन्धिः तस्यापत्यं। स्त्री करीषगन्धि + ष्यङ् + चाप् = कारीषगन्ध् + य + आ = कारीषगन्ध्या। इसलिए इसको शुद्ध स्त्री-प्रत्ययों में नहीं गिना जाता। बचा 'ति'। सो, ति 'युवन्' शब्द से जुड़कर, उससे 'युवति' शब्द निष्पन्न करता है। तो 'ति' को तद्धित क्यों कहा गया? सो, यहाँ एक छुपी बात है- 'युवति' में **पुनः** 'इतो मनुष्यजातेः (4/1/65)" से ङीष् लगता है, जिससे 'युवती' शब्द भी बनता है।

इन दो उदाहरणों में हम देखते हैं कि "स्त्रियाम् (4/1/3)" के अधिकार में पढ़े हुए प्रत्ययों में ये ही दो प्रत्यय हैं जो तद्धित हैं और **जिनसे पुनः स्त्री-प्रत्यय लगते हैं**; अन्य सभी में पुल्लिङ्ग प्रातिपदिक से ही स्त्री-प्रत्यय लगता है।

मेरे अनुसार यह स्पष्ट ज्ञापक है कि "ङ्याप्प्रातिपदिकात्।।4/1/1।।" सूत्र में ङ्याप् को अलग इसलिए रखा गया है कि पुनः स्त्री प्रत्ययों से स्त्री-प्रत्यय न लगाए जाएँ; जहाँ लगाने पड़े, वहाँ शब्दों को तद्धित बना दिया गया। इसी प्रकार का अभिप्राय हम "एको गोत्रे (4/1/93)" सूत्र में भी पाते हैं, जहाँ गोत्र-प्रत्ययों के प्रकरण में पाणिनि पूर्व ही सूचित कर देते हैं कि गोत्र-विषय में एक ही प्रत्यय लगेगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि "ङ्याप्प्रातिपदिकात्" का अर्थ है "ङ्यन्त, आबन्त और ङ्याबन्त को छोड़कर अन्य सब प्रातिपदिक"। फिर "स्त्रियाम् (4/1/3)" के अधिकार में इन ङ्यावन्त-रहित प्रातिपदिकों से ही स्त्री-प्रत्यय होंगे।

इस व्याख्या से "ऊङुतः (4/1/66)" की समस्या

शेष पृष्ठ 23 पर

पुस्तक परिचय : डॉ. विवेक आर्य

पुस्तक : वेदों द्वारा विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान

लेखक : श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

मूलय 500 रुपये पृष्ठ संख्या- 764 प्रकाशक- श्री घूडमल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

प्राप्तिकर्ता स्थान- "अभ्युदयभवन", अग्रसेन भवन कन्या महाविद्यालय मार्ग, स्टेशन रोड,

हिण्डोन सिटी, राजस्थान, 322230 चलभाष- 9414034072, 9887452959

पण्डित धर्मदेव विद्यामार्तण्ड आर्यसमाज गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक, मुलतान गुरुकुल में आचार्य, दक्षिण भारत में आर्यसमाज के प्रबल प्रचारक, सार्वदेशिक पत्रिका के सम्पादक, वेदों के प्रकाण्ड पण्डित एवं स्वामी श्रद्धानन्द के महान शिष्यों में से एक रहे हैं। पण्डित जी जीवन भर "इदं न मम" की यज्ञ भावना का अनुसरण करते रहे। वेदों में पण्डित जी की रुचि सबसे अधिक थी। "वेदों का यथार्थ स्वरूप" पण्डित जी की महान कृतियों में से एक है। अपनी मृत्यु से पहले पण्डित जी ने 1000 पृष्ठों में वेदों द्वारा समस्त समस्याओं का समाधान के नाम से यह पुस्तक लिखी थी, जिसकी पाण्डुलिपि वर्षों तक उनके सुपुत्र श्री भारत भूषण जी के पास सुरक्षित रही थी। उनकी इस महान् कृति को प्रथम बार प्रकाशित करने का पुण्य घूड़मल ट्रस्ट, हिण्डौन सिटी के प्रकाशक श्री प्रभाकर देव जी आर्य ने अर्जित किया है। 764 पृष्ठों की पुस्तक के आधार पर पहले भारत भूषण जी ने संक्षिप्त रूप से Solution to modern problem in Vedas के नाम से अत्यन्त उपयोगी पुस्तक का अंग्रेजी में प्रकाशन किया था। प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाश में लाकर भारत भूषण जी ने अपने पिता जी की स्मृति को चिरस्थायी बना दिया है।

प्रस्तुत पुस्तक में 23 अध्याय हैं जिनमें लेखक ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक समस्याओं का समाधान वेदों के आधार पर दर्शया है। वस्तुतः इसे पढ़कर ऐसा लगता है कि वेदों द्वारा विश्व की कठिन से कठिन समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है। परन्तु हम इस तथ्य से अभी तक अनभिज्ञ ही हैं। आज समाज दिशाहीन होता जा रहा है। इस दिशाहीनता का सबसे बड़ा कारण अज्ञानता है। ईश्वरीय वाणी वेद में ही इस अज्ञान को दूर करने की क्षमता है। मेरे विचार से इस पुस्तक को हर गृहस्थी अपने घर में पढ़े, जिससे पारिवारिक समस्याओं का समाधान हो, हर समाज चिंतक पढ़े, जिससे समाज का समस्यायों का समाधान हो, हर राजनीतज्ञ पढ़े, जिससे राष्ट्र की समस्या का समाधान हो सके। पुस्तक की विशेषता इसमें वेद मन्त्रों के अतिरिक्त सन्दर्भ एवं उदाहरण आदि हैं, जो कठिन विषय को समझने में सहायता करते हैं। लेखक का स्वाध्याय एवं चिंतन पंक्ति-पंक्ति में प्रकाशित हो रहा है। यह पुस्तक आर्यसमाज के इतिहास में कालजयी ग्रंथों में से एक है, यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी। सुन्दर छपाई एवं यथोचित मूल्य इस पुस्तक की एक और विशेषता है। स्वयं पढ़ें एवं अन्य को पढ़ायें।

❑❑

संस्कृति को भाषा से अलग नहीं किया जा सकता

(कृष्ण चन्द्र गर्ग)

आप जो भाषा जानते हैं, उसी भाषा का साहित्य आप पढ़ेंगे। जो साहित्य आप पढ़ेंगे, उसी में वर्णित सभ्यता और संस्कृति को आप जान पाएँगे और अन्त में उसी को अपनाएँगे। उसी भाषा में तथा उसी संस्कृति के हिसाब से आप अपने बच्चों के नाम रखेंगे। उर्दू, अरबी, फारसी, हिन्दी, संस्कृत, पंजाबी, अंग्रेजी भाषाओं को पढ़ने वालों के उदाहरण हम सबके सामने हैं। मैं सिरफ इन भाषाओं को ही ले रहा हूँ क्योंकि हम लोग इन्हीं भाषा-भाषियों के बीच में रह रहे हैं।

अरबी-फारसी पढ़ने वाले कुरान पढ़कर जेहादी और आतंकी बन रहे हैं। उन्होंने अपनी गतिविधयों से सारी दुनिया को तड़पा रखा है। वे विश्व से इंसानियत को मिटाने पर तुले हैं। हिन्दी और संस्कृत पढ़ने वाले वेद के आदेश 'मनुर्भव - मनुष्य बनो' की बात करते हैं और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः - सभी सुखी हों' की कामना करते हैं। उर्दू पढ़ने वाले गालिब के निराशापूर्ण शेयर और दूसरे उर्दू के कवियों की इश्किया शेयरो-शायरी करते देखे जाते हैं। वे शराब और मयखाने की बात पर मस्ती से झूमने लगते हैं। पंजाबी वाले पंजाब, पंजाबी और पंजाबियत का ढिंढोरा पीटते हैं। पंजाब के अकाली नेता हिन्दी भाषा से नफरत करते हैं।

भाषाओं का सम्बन्ध सम्प्रदायों से भी है। उर्दू, अरबी, फारसी मुसलमानों की भाषा है। पंजाबी सिखों की भाषा है। अंग्रेजी अंग्रेजों की भाषा है। हिन्दी, संस्कृत हिन्दुओं और आर्यों की भाषा है।

जो पुस्तक जिस भाषा में लिखी गई है, उसे उसी भाषा में पढ़ने से ही उसके आशय को पूरी तरह समझा जा सकता है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी भाषा में लिखा है। उसके अंग्रेजी अनुवाद 'LIGHT OF TRUTH' को पढ़ने वाला व्यक्ति सत्यार्थ प्रकाश की वास्तविक भावना और विषयों को उतनी गहराई से नहीं पकड़ पाता, जितना कि हिन्दी में सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ने वाला व्यक्ति जान पाता है।

संस्कृत भाषा में वेद, उपनिषद, मनुस्मृति, विदुरनीति आदि वैदिक साहित्य संसार के सभी साहित्यों में सर्वोत्तम है। उस सारे साहित्य के मर्म को जानने के लिए संस्कृत भाषा का जानना परम आवश्यक है। हिन्दी भाषा से कुछ काम चलाया जा सकता है क्योंकि हिन्दी भाषा की लिपि वही है, जो संस्कृत की है और हिन्दी भाषा में बहुत से शब्द संस्कृत भाषा से ही लिए गए हैं।

हम वैदिकधर्मी हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि मतों के पुजारी नहीं हैं। हम मानवतावादी हैं और मानवता के पुजारी हैं। हमें देखना है कि विज्ञानसम्मत, तर्कपूर्ण, बूद्धिपूर्वक, प्रकृति के अनुकूल और मानवतावादी सहित्य किस भाषा में है। फिर उस भाषा को जानना हमारा कर्त्तव्य बन जाता है और निःसन्देह वह भाषा संस्कृत ही है। हिन्दी और संस्कृत के सिवाए अन्य भाषाएँ आवश्यकता और इच्छानुसार पढ़ी-पढ़ाई जा सकती हैं, परन्तु संस्कृत भाषा के महत्त्व को कम करके आँकना सरासर गलत और भयंकर अन्याय है।

अगस्त 2014 की 'VEDIC THOUGHTS' पत्रिका में इस विषय पर लाला लाजपत राय तथा महात्मा आनन्द स्वामी के कुछ शब्द छपे हैं। उन पर विचार करना भी जरूरी हो जाता है। लाला लाजपत राय के शब्द छपे हैं - 'स्वामी दयानन्द को जिन लोगों ने समझा,

वे इंग्लिश जानने वाले थे। संस्कृत जानने वाले तो उनके हर पल विरोधी थे। मैं समझता हूँ कि इसका कारण संस्कृत भाषा नहीं, अपितु संस्कृत भाषा में जो पुराण आदि अवैदिक पुस्तकें वे पढ़ते हैं, वे थीं। पुराण तर्कहीन, अनर्गल, बेतुकी, अमानवीय और गलत बातों से भरे पड़े हैं ऐसी पुस्तकों को पढ़ने वाले व्यक्ति भला महर्षि दयानन्द की तर्कपूर्ण वेदसम्मत बातों को कैसे स्वीकार कर सकते थे।

दूसरी बात - महात्मा आनन्द स्वामी के शब्द - 'हिन्दी रक्षा आन्दोलन के बाद ईमानदारी से मैंने एक बात जो समझी, वह थी आर्य समाज का भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं। भाषा पर अपनी शक्ति खर्च करने की बजाय प्रचार में शक्ति खर्चें।' इसके उत्तर में - पंजाब के 1957 के हिन्दी सत्याग्रह से मैं भी जुड़ा रहा हूँ। महात्मा आनन्द स्वामी जी के ये शब्द आज तक मेरे सुनने या पढ़ने में कभी नहीं आए थे। इसलिए महात्मा आनन्द स्वामी जी पर कोई भी टिप्पणी न करते हुए मैं इन शब्दों को लेता हूँ 'आर्य समाज का भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं।' मैं इन शब्दों से पूरी तरह असहमत हूँ। महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित आर्य समाज का सारा साहित्य हिन्दी या संस्कृत भाषा में है। क्या हम महर्षि दयानन्द की लेखनी को पढ़ने के लिए दूसरी भाषाओं का सहारा लेंगे? और भी, 1970 में पंजाब में जब सभी शिक्षण संस्थाओं में पंजाबी भाषा को अनिवार्य रूप से शिक्षा का माध्यम घोषित कर दिया गया था तब डी. ए.वी. संस्था ने सर्वोच्च न्यायालय में उस आदेश के खिलाफ अपील की थी कि आर्य समाज की भाषा हिन्दी है और पंजाब में आर्य समाजी भाषायी अल्पसंख्यक हैं। अतः उन्हें हिन्दी भाषा को शिक्षा का माध्यम रखने की छूट हो। सर्वोच्च न्यायालय ने इस तर्क को स्वीकार किया था और 5 मई 1971 को निर्णय दे दिया था। ❑❑

पृष्ठ 20 का शेष

बनी रहती है- ऊङ् पर पुनः स्त्री-प्रत्यय क्यों न लग जाए? तो, इसमें पहले तो 'ऊ' अन्त वाले शब्दों से कोई स्त्री-प्रत्यय नहीं कहा गया है; कुछ पुल्लिंङ्ग शब्द जो ऊदन्त हैं, वे सूत्रों में अलग-अलग पढ़ दिए गए हैं, जैसे "भुवश्च (4/1/47)"। इसलिए ऊङ् के उपरान्त पुनः स्त्री-प्रत्यय लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। तथापि, ङ्याप् के ङी में, ङन्त होने से, ऊङ् को भी ङी के अन्तर्गत ही गिना जाना चाहिए। इससे कोई शक की गुंजाइश नहीं रहेगी।

अब यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि स्त्री-प्रत्ययान्तों से पुनः स्त्री प्रत्यय लग ही नहीं सकते, इसका ज्ञापक है "अजाद्यतष्टाप् (4/1/4)", जहाँ 'अजा' आदि शब्द टाप् लगे हुए ही पढ़े गए हैं। उनमें पुनः टाप् नहीं लगता। सो, हम ऊपर दिखा ही आए हैं कि ष्यङ् और ति प्रत्ययों में वे लगते हैं। सो, स्त्री-शब्दों में भी पुनः स्त्री-प्रत्यय जुड़ने की सम्भावना बनी रहती है। इसके निवारण के लिए 4/1/1 में 'ङ्याप्' को पाणिनि ने 'प्रातिपदिक' से अलग रखा। इसी के कारण 'अजा' आदि में पुनः टाप् नहीं लगा।

इस प्रकार समझने से "ङ्यापप्रातिपदिकात्।।4/1/1।।" की गुत्थी सुलझ जाती है, और यह आक्षेप भी हट जाता है। कि पाणिनि ने सूत्रों में निरर्थक गौरवता उत्पन्न की।

मुझे आशा है कि व्याकरण के पण्डित मेरे सुझाव पर अवश्य ध्यान देंगे और अपनी प्रतिक्रिया अगले अंकों में विज्ञापित करेंगे। ❑❑

ब्रह्म-विचार

(ले0-साहित्यरत्न श्री पं0 निरंजनदेव जी एम0एम0 सिद्धांत विशारद,
वैदिक मिश्नरी अजमेर)

वैदिक साहित्य में ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों को त्रैतवाद नाम से वर्णन किया गया है। हमारा प्रति पाद्य विषय ब्रह्म है, संसार में आस्तिक और नास्तिक भेद से दो प्रकार के विचार पाये जाते हैं। इन शब्दों के अर्थ आवश्यकता नहीं क्योंकि ये शब्द जन साध ाारण पहुंच गये हैं। जो ईश्वर की सत्ता नहीं मानते हैं यथा जैन बौद्ध चारवाक आदि ये सब नास्तिकों की श्रेणी में हैं। आर्य, हिन्दू, ईसाई, मुसलमान आदि ईश्वर को मानते हैं इसलिये ये आस्तिक कहाते हैं। सम्प्रति वैदिक ईश्वर के स्वरूप का विचार करना है।

यदि हम साधारण मनुष्य की तरह इस संसार पर दृष्टिपात करे तो दो प्रकार का संसार मिलता है। एक जड़ दूसरा चेतन इन दोनों प्रकार के जगत् में हम प्रथम चेतन जगत् की मीमांसा आरम्भ करते हैं। इस चेतन संसार में हमें सर्वत्र असमानता दिखाई देती है। कोई राजा सम्पत्तिशाली भव्य-भवनों में विलास पूर्ण जीवन यापन करता है। कोई नानाविध संकटों से परिपूर्ण जीवन पथ को विशुद्ध करने का प्रयास करता है। कहीं पर दारिद्रय-देव का ताण्डवनृत्य हो रहा है। किसी श्रेणी में स्वास्थ्य सुधाधारा प्रसुवित होती दिख रही है तो दूसरी ओर नरकंकल ही अवशिष्ट दिखाई दे रहे हैं। प्रतीत ऐसा होता है कि वर्षो से इनमें जीवन रस नहीं सेचन किया गया। प्रश्न होता है कि इस असमानता का उदय कहां से हुआ? उत्तर में यही कहा जाता है मनुष्य स्वतन्त्र प्राणी है वह अपनी स्वतन्त्रता से कार्य सम्पादन करता है। उसकी अपनी इच्छाओं को रोकना ही दुख है। यही वैज्ञानिकों का मत है ''वाधनालक्षण दुःखम्'' यदि इच्छा में बाधा की गई तो नैराश्य का जीवन यापन करना पड़ेगा। सुख सम्पत्ति नष्ट हो जायगी। दुख से जब सब प्राणीवर्ग भय मानता है तो मनुष्यों की तो कथा ही क्या कहनी। किस की इच्छा है कि क्लेश का सामना करना पड़े। सब सुख की कामना से प्रयत्नशील हैं। ''दुग्वादुद्विजते सर्व, सर्वस्य सखमीप्सितम'' किन्तु दुख जीवन में मिश्रित अवश्य है। यह एक घटना किसी अदृष्ट के हाथ में है। वही अदृष्ट परमेश्वर है जो मनुष्य की अपनी इच्छा रहने पर भी सद-सत् फल-लाभ करता है। विकासवादी समस्त प्राणियों में समानता मानते हैं। हमारा भी कथन है कि यह सब समानता शरीरों में है क्योंकि शरीरों का निर्माता एक ईश्वर है और साथ ही इन सब शरीरों में कहीं 2 असमानता दृष्टिगोचर होती है। उसके लिये इतना ही कहा जा सकता है कि वह आवश्यकतानुसार परिवर्तन रूप है जैसे एक इंजीनियर मकान बनवाते समय जल वायु प्रकाश (तेज) का ध्यान रखता है और मलादि निष्कासन का भी ध यान रखता है। मकानों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करना उसका अपना कर्तव्य है ऐसे ही शरीरों में होता है। चेतन संसार की सुख दुख की अवस्था देखकर

सहसा प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस सुखे-तरक्लेश की अवस्था से क्या प्रयोजन है? नास्तिक लोग इसी असमानता को देखकर जो दुख की द्योतक है किसी ऐसी शक्ति को स्वीकार नहीं करते हैं। ये यहां पर जीवन मरण, हर्ष, भय, शोक, कलह आदि बातों का अवलोकन कर यह सिद्ध करते हैं कि यहां पर कितना वैपरीत्य है, क्या आवश्यकता है किसी अधिष्ठाता या संचालक के मानने की शक्ति का स्वीकार करना अज्ञानता है? विकास क्रम का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रतिकूल परिस्थिति विकास का मूल कारण हाती है। एक वैज्ञानिक का कथन है कि इस संसार में भोग की असमानता ही सुख सौन्दर्य है, यदि अवस्था भेद न माना जाये तो जीवन में किसी को अभिरुचि न होवे। जीवन का मूल्य मृत्यु से ही मालूम होता है। यदि मृत्यु को दूर कर दिया जाये या उसकी सत्ता ही रहने पाये तो जीवन अपना कुछ भी महत्व नहीं रखता। नेत्रों की आवश्यकता उसी समय मालूम होती है जब किसी को हम नेत्रविहीन देखते हैं जो चलना फिरना आदि कार्यों से तंग अवस्था में है। यह सब असमानता भोगवाद पर आश्रित है यही उन्नति का मूल कारण है। इसी आधार पर यह कार्य होते हुए देखकर आस्तिक संसार में एक शक्ति की कल्पना की जाती है। हमने ऊपर की पंक्तियों में इच्छा स्वातन्त्र्य का उल्लेख किया है वह स्वतन्त्रता जीव को ही प्राप्त है। मनुष्य कर्म करता है उस कर्म का फल भी दिखाई देता है इसीलिये ईश्वर की सत्ता माननी पड़ती है। कुछ यह मानते हैं कि मनुष्य के अपने कर्मो से कुछ नहीं होता, यह सब ईश्वर की ओर से उपलब्ध होता है। इस विषय को इस प्रकार वर्णन किया गा है कि पुरुष के कर्म के अभाव में फल को निष्पत्ति नहीं होती यह उक्त कथन कि जीवन को सुख दुख ईश्वर से प्राप्य है संगत प्रतीत नहीं होत, क्योंकि ईश्वर कर्मफल का दाता है इसी हेतु से उक्त हेतु संगत चरितार्थ नहीं है।

न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः तत्कारित्वादहेतु।

भाव स्पष्ट है। मनुष्य कर्म किया करता है और फल ईश्वर दिया करता है। सांख्य में कर्म तीन प्रकार का वर्णन किया गया है। ''शुक्लाशुक्ल, शुक्ल-कृष्ण भेदात्--। यही गीता में भी वर्णन किया गया है। कुछ एक का मन्तव्य है, जब जीव का कर्म अपना है तो फल भी स्वयं ग्रहण कर लेगा। ईश्वर की क्या आवश्यकता है। कर्म विज्ञान की गहराई में न जाते हुए हम यह लिखेंगे कि यह बात एक पल के लिए भी नहीं मानी जा सकती। सब कर्म सुख के लिए ही करता है। परन्तु उससे ही दुख के कारण बन जाया करते हैं। ऐसी सूरत में क्या वह जीव स्वयं कई फल भोगने का अभिलाषी है जिसका फल दुख है? एक चोर चोरी करके क्या स्वयं कारावास की कड़ी यन्त्रणाओं को सहन करने के लिए कटिबद्ध होगा? कदापि नहीं इसलिए न कर्म स्वयं फल उत्पन्न कर सकता है और न कर्ता (जीव) स्वयं स्वकृत कर्मो का फल प्राप्त किया करता है। उसे फल प्राप्ति ईश्वर द्वारा हुआ करती है। अतः चेतन जगत को देखने से एक ईश्वर की सत्ता माननी पड़ती है।

जड़ जगत्

के विषय में अब प्रकाश डालने की आवश्यकता है। विज्ञान यह सिद्ध करता है कि प्रत्येक प्रकृति का परमाणु गति करता हुआ नाना रूप धारण करता है। सब में परिवर्तन हो रहे हैं। इस परिवर्तन को देख कर

हम तीना बातों का ज्ञान होता है। उत्पत्ति वृद्धि और विनाश।..... कोई उत्पन्न हो रहा है, किसी की वृद्धि हो रही है और कहीं कोई विनाश की ओर जा रहे हैं। विनाश से तात्पर्य यह है कि जो वस्तु जैसी अवस्था में अपने से पूर्व थी उसी अवस्था में पुनः पहुंचाने का नाम विनाश है। कार्य और कारण का परस्पर सम्बन्ध है। जहां जहां कार्य वहां वहां कारण होता ही है। बिना कारण के कार्य नहीं होता। वृक्ष की इस वर्त्तमान परिस्थिति को देखकर हम अनुमान करते हैं कि इस अवस्था में आने के लिए कोई कारण अवश्य था और वह है बीज रूप में, वही बीज जो मिट्टी में पड़कर धूप पानी आदि सब साधन प्राप्त कर अंकुर बना था, अंकुर बनने की अवस्था से अब यह विशाल वृक्ष बना। घड़े को देखकर उसके कारण मिट्टी का ज्ञान स्वयं हो जाता है। प्रत्येक पदार्थ जब कारण से कार्य की अवस्था तक आते हैं तो उसी समय से उनमें परिवर्तन आने लगते हैं। यही परिवर्तन उन्हें अब अवस्था तक पहुंचा देता है। पूर्व में थी यही परिवर्तन क्रम है। हम इस परिवर्तन को देखकर इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि इस संसार का इस प्रकार संचालन करने वाली कोई अलौकिक वस्तु है। विकासवादी हमारे मन्तव्य से दूर है वे तो यह कहते हैं कि जिस प्रकार अब परिवर्तन दिखाई दे रहा है पूर्व में भी इसी प्रकार परिवर्तन हो रहे थे इन्हीं के कारण सृष्टि की वर्तमान परिस्थिति दिखाई देती है। यह जो वर्णन किया गया है। यह विज्ञान के आधार पर है, तो निसंकोच मानना पड़ेगा कि उसके अन्दर अद्भुत शक्ति अन्तर्हित है। यदि समस्त जगत परिवर्तन का रूप है और सारा जगत परिवर्तन के सहारे पूर्व से चल रहा है आगे भी चलता रहेगा तो अन्त में यह परिवर्तन एक समय अवश्य ही बन्द हो जायेगा। परिवर्तन होना प्रकृति का स्वाभाविक गुण नहीं, स्वभाव का अर्थ सदा एक रस रहने वाला अपरिवर्तनशल होता है, तो यह परिवर्तन स्वभाव कैसा? इस परिवर्तन क्रिया को देखकर ज्ञात होता है कि यह परिवर्तन किसी बाहर की वस्तु से आया है। उदाहरण है, एक घड़ी की सुई चक्कर करती है, तो यह चक्र पर चलती हुई किसी दूसरे से सम्बन्ध रखती है वह है घड़ी के निर्माता का। चक्र पर गति का गुण घड़ी बनाने वाले का दिया हुआ है यदि वह गति को बंद कर दे तो सुई भी बन्द हो जाती है। धनुष के बाण में अपनी गति नहीं वह आगे दौड़ता है, इसका कारण है कि धनुर्धर ने उसे वेग से फेंका है। जहां पर बाण में दिये वेग की न्यूनता होगी, बाण की गति बन्द हो जायगी। जैसे घड़ी की सुई या बाण या मिट्टी का ढेला स्वयं समय पाकर बन्द हो जायेंगे एवमेव ही सारे पदार्थ परिवर्तन को बन्द कर देंगे। बाण में चलने के पूर्व स्थिरता थी वह गतिमान नहीं था किन्तु गति आने पर गति वाला हुआ। इसी प्रकार संसार के पदार्थों की भी अवस्था है इसमें गति देने वाला कौन है? कहना पड़ेगा कि वही परमात्मा है। डारबिन की विचार धारा में ईश्वर को अवकाश नहीं था परन्तु बाद में वैज्ञानिकों ने ईश्वर और जीव की भी खोज की, आज का वैज्ञानिक पक्ष अपनी समस्त चर्चा ईश्वर का सहारा लिए बिना प्रस्फुटित होते नहीं देखता। विज्ञान के स्वाध्याय से हमें इस प्राकृतिक जगत में श्रेणी विन्यास, योजना, धारण और विचार दिखाई देते हैं। सब बातें हमें एक चैतन्य की

ओर से संकेत करती हैं। जिसका वेदोप निषद् में वर्णन किया गया है। वेद की इस गाथा पर दृष्टिपात कीजिये ''स्कम्भं ब्रूहि'' अर्थात् संसार के स्कम्भका वर्णन करो, इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि ''कतमस्विदेवसि'' इसी आनन्दस्वरूप सत्य अविनाशी ईश्वर को ब्रह्म नाम से वर्णन किया गया है। चेतन और जड़ जगत पर विचार करने से ईश्वर की सत्ता का ज्ञान हुआ। अब हम उस ब्रह्म के स्वरूप पर विचार करेंगे। उल्लिखित पंक्तियों से जब यह सिद्ध हो गया कि ब्रह्म है, तो उसका क्या स्वरूप है यह प्रतिपादन करना भी आवश्यक हो जाता है।

❑❑

देश का 19वाँ राज्य है मणिपुर

[आई.डी. गुलाटी, संस्थापक-हिन्दू महासभा]

(1) इस राज्य का विलय भारत में 1949 में हुआ था।

(2) इसकी राजधानी का नाम इम्फाल है।

(3) इसका क्षेत्रफल 22327 वर्ग किलोमीटर है।

(4) इसकी सीमाएँ मिजोरम-असम-नागालैण्ड तथा म्यंमार से मिलती हैं।

(5) इसमें 8 जिले हैं। यहाँ मणिपुरी तथा हिन्दी प्रमुख भाषाएँ हैं।

(6) मणिपुरी को संविधान की 8वीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया है।

(7) यहाँ जनजातियों का प्रतिशत 27.3 प्रतिशत है।

(8) कुकी प्रमुख जनजाति है, जो हिन्दू है। आज इसकी 15 पुरानी तथा 9 नई जनजातियाँ हैं।

(9) इस राज्य में भी उग्रवादी - अलगाववादी - आतंकवादियों के कई संगठन हैं जो समय समय पर सक्रिय हो जाते हैं।

(10) स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष/सशस्त्र क्रान्तिकारी कार्य करने वाले नेताजी सुभाषचन्द बोस यहाँ भी आए थे।

(11) कुकी शान्ति प्रिय प्रवृत्ति के हैं और राज्य की सीमाओं में परिवर्तन नहीं चहते हैं।

(12) नागालैण्ड से मिली हुई सीमान्त क्षेत्रों में इसाई नागा रहते हैं वे अपने क्षेत्रों का विलय नागालैण्ड में करना चाहते थे।

(13) मणिपुर के अनेकों युवा छात्र-छात्राएँ उच्च शिक्षा के लिए नई दिल्ली के वसंत विहार में रहते है। कुछ छात्र-छात्राओं के साथ छेड़छाड़ की एवं अश्लील घटनाएँ हुई हैं जिनकी घोर निन्दा की जाती है।

(14) मणिपुर में मुस्लिम भी हैं। एक मुस्लिम नेता तो राज्य का मुख्यमंत्री भी रहा है।

(15) मणिपुर का कोई नेता अखिल भारतीय स्तर के किसी बड़ी पद पर चुना नहीं गया है इसलिए पूर्वोत्तर भारत के इस राज्य को कम महत्व मिला है।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७ अक्टूबर २०१४
Post in Delhi R.M.S
०१-०७/१०/२०१४

अक्टूबर 2014

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2012-14
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● **प्रचार संस्करण (अजिल्द)** 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● **विशेष संस्करण (सजिल्द)** 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● **स्थूलाक्षर सजिल्द** 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा० .....
जिला.....

छपी पुस्तक/पत्रिका

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीताराम, दिल्ली-६